अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

□ मूल्य : 5.00
□ अंक : 13
□ 16-28 फरवरी, 2014
□ वर्ष : 37

संसार के विद्यालय में शिक्षा

जीवन के अपने अब तक के विविध अनुभवों से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि हमारा विद्यार्थी-जीवन अपने कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और लॉ चेम्बरों से निकलने के बाद आरंभ होता है। वहां हमसे यह अपेक्षा की जाती है कि अपने पढ़ाई के विषयों को ज्ञान की कुंजी मानकर और उनसे अंतरंग भाव से जुड़कर अध्ययन करें। और उन स्थानों को जब हम छोड़ते हैं, तो जो कुछ हमने सीखा होता है उस सबको लगभग भूल जाते हैं। वस्तुतः, बाद के जीवन में ही हमें बहुत-सी चीजें सीखनी होती हैं। तथाकथित विद्यार्थी-जीवन असली विद्यार्थी जीवन के लिए महज एक तैयारी होता है। आप जब कॉलेज में या कहीं अन्यत्र होते हैं, तो आपके पास निश्चित विषय होते हैं। वैकल्पिक विषयों में भी आपको उन्हें एक विशेष ढंग से सीखना होता है, क्योंकि आप एक सांचे में कसे हुए होते हैं। परन्तु जब वह अवस्था समाप्त हो जाती है, तो आप एक आजाद पंछी की तरह हो जाते हैं, जो अपने पंखों से खूब ऊँचा उड़ सकता है। और आप जितना ऊँचा उड़ते हैं, उतने ही शक्तिशाली होते जाते हैं। इसलिए मैं अभी भी एक ऐसा विद्यार्थी हूं जो संसार के विद्यालय में अपनी शिक्षा समाप्त नहीं कर पाया है।

(लंदन, 15 अक्टूबर, 1931)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 13
16-28 फरवरी, 2014

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविताएँ... 2
2. लोक-स्वामित्व की... 3
3. कस्तूरी-सुगंध-सी कस्तूरबा... 4
4. गांधी के बाद अहिंसक... 5
5. जन-आंदोलन का औचित्य... 8
6. इस डर के पीछे क्या... 9
7. जलवायु पर नया... 10
8. आमंत्रित आपदा के... 11
9. उद्योग, विकास और... 13
10. सहयोगात्मक अर्थव्यवस्था... 14
11. बाढ़ और डूब में फर्क... 16
12. स्वच्छ काशी-आंदोलन... 17
13. अन्ना मलई राष्ट्रीय गांधी... 18
14. गतिविधियां एवं समाचार... 19
15. साम्प्रदायिक सद्भाव कैसे... 20

कविताएं

पितृसत्ता के नाम...

–जागृति राही

जिन्दगी की बिसात पर
रिश्तों को मोहरे की तरह
इस्तेमाल करते हुए
चालें चलते हो तुम
तुम्हारी बनायी चहारदीवारी में
एक मोहरा दूसरे को हराता-पीटता
चलता जाता है
जीत जाते हो तुम, हमेशा गुलामों से
हार जाती है संवेदनाएं

भावनाओं के इस खेल में
होते जाते हो तुम क्रूर से क्रूरतम
हारे हुए हम
ठगे से रह जाते हैं जीवन की जंग में
और फिर उगने लगते हैं
आंसुओं से नम आंखों की मिट्टी में
खतरनाक जहर भरे सपनों के वृक्ष
सचेत हो तुम
करते हो नियंत्रण राजनीति का
घरौदों में दबा देते हो हर विद्रोह
उगने से पहले काट-छांट देते हो
सपनों को
हर झूठ को
सच बना डालते हो
ताकत से अपनी

फिर नहीं होता कोई विरोध

पर नहीं जानते थे तुम
कि तुम्हारे अहं का ये बोझ
एक दिन ढँक देगा तुम्हारे वजूद को
आएगा एक दिन
जब घरों के भीतर से
मेरी राख के गुबार में दबी चिंगारी
छू लेगी तुम्हें
नहीं सह पाओगे तुम
उस भयानक तपन को
तब तक बनाओ अपने इर्द-गिर्द
झूठ का एक नया संसार
निर्माण करो अपनी सम्मोहक
मायावी छवि का
करो प्यार खुद से
जुटा कर रखो
समर्पित देहों का भंडार
खाली रहोगे फिर भी मन से
हल्के हो इतने मेरी नजर में कि
सारी बौद्धिक कवायद के बाद भी
टिक नहीं पाते कहीं एक जगह देर तक
जड़ों के बिन
बस उड़ते जाते हो सतत
पर बिना गहराई के...

बीच राह पर बिकते पाया

–अनुज कुमार शर्मा 'रामानुज'

चौराहे पर हमने जिनको बिकते देखा
बीच राह पर उसको हमने बिकते पाया
उनकी आंखों में सावन भी झरते देखा
जिसने खून-पसीने से संसार सजाया
वे बैठे लाचार झुकाए सिर को अपने
दुःख से वे असहाय न सुख के देखे सपने
मलिन वस्त्र से लिपटी उनकी निर्बल काया
सर्दी की बेजोड़ हवाएं उन्हें कँपाती
काँप रहे अंगों पर आँसू बनकर आती
वे सर्दी बरसात न जाने धूप सुहानी
भूखी-सूखी अँतड़ियों को हिलते देखा
रो लेती है कहीं आड़ में छुपी जवानी
इन बेजानों की भी जान मचलते देखा

संपादकीय

लोक-स्वामित्व की निरन्तरता

अहिंसक क्रांति के संदर्भ में लोक स्वामित्व का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। योरोप व उत्तरी अमेरिका में तथा अन्य पूंजीवादी राष्ट्रों में भी लोक की अवधारणा काफी कुछ बदल चुकी है। तथाकथित विकसित देशों में केन्द्रीकृत औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप वहां बड़े शहरों का विकास हुआ है। ग्रामीण जनसंख्या का व्यापक पलायन शहरी क्षेत्रों में हुआ तथा इसके फलस्वरूप उन अर्थ-व्यवस्थाओं में ग्रामीण जनसंख्या 5 प्रतिशत से भी कम रह गयी है। विकास के संदर्भ में जब वे बताते हैं तो यही बताते हैं कि ग्रामीण जनसंख्या का अधिक होना एक संक्रमण की अवधि है। विकास होते ही, इन (अल्प विकसित या पिछड़े) राष्ट्रों में भी ग्रामीण जनसंख्या काफी कम हो जायेगी।

इसीलिए विकास के उनके मॉडल में 'लोक' शब्द नहीं आता है। वे ग्रासरूट्स (grassroots) स्तर या जमीनी स्तर की बात करते हैं। जब आप 'लोक' शब्द का इस्तेमाल करते हैं, तो आप 'लोक-स्वामित्व' की अवधारणा की भी बात कर सकते हैं। जब आप ग्रासरूट्स की बात करते हैं, तो उसमें स्वामित्व या सामूहिक स्वामित्व की अवधारणा को समाहित नहीं कर पायेंगे।

दुनिया भर में विकास के नाम पर पूंजीवादी संस्थाओं द्वारा पोषित व निर्मित दान (सहयोग) देने वाली संस्थाओं का निर्माण किया गया। फिर दुनिया भर में विकास के नाम पर NGOs को सहायता देने की बात की गयी। ये गैर सरकारी संस्थाएं (ध्यान रखें, क्रांतिकारी या स्वयंसेवी संस्थाएं नहीं) विकास के नाम पर ग्रासरूट्स स्तर (grassroots level) पर 'विकास के कार्यक्रम चलायें, इसलिए इन्हें पूंजीवादी पोषित इकाइयों से सहायता प्रदान की जाती रहती है। तथाकथित विकास का काम हो, लेकिन इसमें लोक-स्वामित्व की गंध दूर-दूर से भी न आये। इस प्रकार सारा खेल यह है कि आज ग्रासरूट्स को पूंजीवादी बाजार के सहअस्तित्व में कैसे लाया जाये तथा भविष्य में इसे पूंजीवादी बाजार की जकड़ में कैसे लाया जाये।

अगर ध्यान से हम देखें तो पायेंगे कि 'विकास' के नाम पर grassroots स्तर पर सबसे अधिक धन उन क्षेत्रों में भेजा जा रहा है, जहां के जल, जंगल, जमीन व खनिज को पूंजीवादी बाजार के अंतर्गत लाना है। सबसे अधिक एन.जी.ओ. इन्हीं क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, जो यह वातावरण बना रहे हैं कि जल, जंगल, जमीन व खनिज को बाजार के अंतर्गत बिना बड़े संघर्ष के कैसे लाया जा सके।

इसकी एक बानगी श्री अरविन्द केजरीवाल की पुस्तक 'स्वराज्य' है। पृष्ठ 90 पर वह लिखते हैं कि ''जल, जंगल, जमीन, खनिज और अन्य प्राकृतिक संसाधन— इनके ऊपर सीधे-सीधे नियंत्रण जनता का होना चाहिए।'' आगे वे लिखते हैं कि ''कानून में बदलाव होने चाहिए। अगर कोई कंपनी फैक्ट्री लगाना चाहेगी तो उसको अपना प्रस्ताव राज्य सरकार की बजाय ग्रामसभा में रखना पड़ेगा। उसको अब राज्य सरकार से अनुमति लेने की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए।...जनता निर्णय लेगी कि हम अपनी जमीन देना चाहते हैं कि नहीं देना चाहते हैं, और अगर देना चाहते हैं, तो किन शर्तों पर देना चाहते हैं।''

इस दृष्टिकोण के पीछे दो मान्यताएं हैं। एक तो, राज्य से संबंधित, तथा दूसरी लोक से संबंधित। यहां फैक्ट्री पूंजीवादी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। अब अगर फैक्ट्री (यानी पूंजीवादी व्यवस्था) को जल, जंगल, जमीन, खनिज या अन्य प्राकृतिक संसाधन की जरूरत है, तो उसमें राज्य का दखल नहीं होना चाहिए। पूंजीवादी बाजार के निर्बाध विस्तार में राजसत्ता को दखल देने या उस पर नियंत्रण रखने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है। तथाकथित निजीकरण, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण का लक्ष्य भी यही है।

साथ ही, जनता निर्णय लेगी, यह कहना भी एक छलावा है। यह लोक-स्वामित्व की निरंतरता एवं सनातनता को खतम करने का शब्द आडम्बर है। इसकी मूल भावना यही है कि लोक के स्वामित्व को खंडित किया जा सकता है। यदि समाज को फैक्ट्री की जरूरत है, तो उस फैक्ट्री पर भी स्वामित्व लोक का ही बना रहेगा। यदि कोई थोड़ा पैसा या पूंजी लगाता है, तो उसे भी कुछ लाभांश दिया जा सकता है। लोक के स्वामित्व के अंतर्गत लाभांश एक बात है तथा पूंजीवाद का मालिकाना हक कायम करना यह दूसरी बात है। इसलिए हमने कहा कि एनजीओ ऐसा वातावरण बना रहे हैं कि जल, जंगल, जमीन व खनिज को बाजार के अंतर्गत बिना किसी बड़े संघर्ष के कैसे लाया जा सकता है।

लोक-स्वामित्व की अवधारणा को समझने के लिए एक अन्य पहलू को भी समझना होगा। लोक एक निरंतर इकाई है, किसी एक समय में उपस्थित व्यक्तियों का समूह नहीं है। आज के व्यक्ति-समूह के पास जो कुछ है, वह भविष्य के व्यक्ति-समूहों के ट्रस्टी के रूप में है। यदि आज के व्यक्ति-समूह, लोक-स्वामित्व के अधीन किसी स्रोत को पूंजीवादी बाजार के हवाले कर देंगे, तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे भविष्य के लोक-स्वामित्व की संभावना को खतम कर रहे हैं। यही तो पूंजीवाद चाहता है।

जैसे लोक की निरंतरता है, उसी प्रकार प्रकृति के जीवन आधार स्रोतों पर लोक-स्वामित्व की निरंतरता है। यहां तक कि प्रकृति प्रदत्त जीवन आधार स्रोतों का इस प्रकार भी उपयोग नहीं किया जा सकता कि उनकी पोषण करने की क्षमता भविष्य में घट जाये। ग्रामसभा के प्रस्ताव हों या कोई और प्रस्ताव, वे जीवन आधार के स्रोतों पर लोक के स्वामित्व की निरंतरता को खंडित नहीं कर सकते। यह अवधारणा, लोक स्वराज्य एवं लोक-संप्रभुता का बुनियादी आधार है। बिमल कुमार

'बा' की 70वीं पुण्यतिथि पर विशेष

कस्तूरी-सुगंध-सी कस्तूरबा

❑ चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

22 फरवरी का दिन कस्तूरबा की पुण्यतिथि है। 'बा' बापूजी से लगभग छह माह उम्र में बड़ी थीं। 22 फरवरी, 1944 को आगाखां पैलेस (महल) में कारावास में 'बा' का देहावसान हो गया। 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में ही कस्तूरबा को शहादत प्राप्त हुई। कस्तूरबा की समाधि पर स्वयं महात्मा गांधीजी ने छोटे-छोटे शंखों से 'हे राम' शब्द अंकित किये हैं। 'करेंगे या मरेंगे' यह भारत छोड़ो आंदोलन का घोषवाक्य 'बा' ने सत्य साबित कर दिया। महादेवभाई देसाई की समाधि पर 'क्रॉस', तो उनकी समाधि पर 'स्वास्तिक' चिह्न बनवाने का निश्चय भी हो गया था। इसमें मृतक की पूजा की भावना नहीं थी, बल्कि उनके गुणों का स्मरण होता रहे और गुणों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जाये, इतनी ही नम्र भूमिका थी। इससे उनके गुणों का अनुसरण करने की प्रेरणा मिलेगी यह भावना थी।

'बा' के कारावास का सुन्दर वर्णन डॉ. सुश्री सुशीला नायर ने किया है। 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय गांधीजी के गिरफ्तार होने पर 'बा' उनके साथ जाना चाहती थीं। तब गांधीजी ने कहा कि ''मेरे साथ आने के बदले मेरे द्वारा अंगीकृत काम को आगे चलाओ।'' अतः 'बा' ने बापू का काम आगे चलाने का तय किया। बापू शिवाजी पार्क में भाषण करने वाले थे, इसलिए बा ने जाहिर किया कि वह अब शिवाजी पार्क में भाषण देंगी। हम पकड़े जायेंगे इसकी कल्पना होने से कस्तूरबा ने एक संदेश लिखकर रखा, ''महात्माजी ने आप लोगों को बहुत कुछ कहा है। कल ढाई घंटे ए.आई.सी.सी. की बैठक में उन्होंने अपना मनोगत व्यक्त किया है। अब इससे अधिक कहने को क्या बचा है? अब तो उनकी सूचना पर अमल करना है। बहनों को अपना तेज दिखाने का सुअवसर है। सभी धर्म और जाति की बहनों को एकत्रित होकर यह लड़ाई सफल करके दिखानी है। सत्य और अहिंसा का मार्ग न छोड़ें।'' शिवाजी पार्क तक पहुंचने के पहले ही 'बा' को पकड़ लिया गया। गिरफ्तारी के समय प्रत्येक सैनिक अपने कपड़े पर 'करेंगे या मरेंगे' लिखा हुआ बिल्ला सी ले, यह तय था। 'बा' को यह सुझाया गया, तब उन्होंने कहा, ''मुझे इसकी क्या जरूरत है?'' वह तो उनके कलेजे पर ही उत्कीर्ण था।

''पत्नी को अपने हृदय की गृहस्थी की सम्राज्ञी बनाने के स्थान पर पुरुष ने उसे क्रय-विक्रय की वस्तु बना दिया है। अंग्रेजी साहित्य पढ़कर पुरुष वर्ग ने यही पाठ पढ़ा है क्या? स्त्री-पुरुष की अर्धांग-उत्तमांग है, ऐसा वर्णन किया जाता है। लेकिन पुरुषों ने स्त्रियों को गुलामी की स्थिति में पहुंचा दिया है। परिणामतः हमारा देश पक्षाघात से पीड़ित होने की हालत में है।'' यह गांधीजी ने कहा था। ''हमने मूर्खतावश स्त्रियों को सती होना सिखाया। यह व्यक्तिपूजा की पराकाष्ठा है। पर पत्नी धर्म तो यह है कि वह पति के कार्य को स्वयं ही अमर करे।'' गांधीजी के इस संदेश को कस्तूरबा ने जीवन में उतार लिया। ''विशुद्ध जीवन जीने के मेरे प्रयत्न में कस्तूरबा ने कभी मुझे रोका नहीं। इस कारण यदि हमारी बुद्धि-शक्ति में काफी अंतर हो, तो भी हमारा जीवन संतोषी, सुखी और हम दोनों के लिए उन्नत करने वाला रहा है, यह मेरा मत है। मुझे जन्म-जन्मांतर तक सहचारिणी का चयन करना पड़ा, तो मैं 'बा' को ही पसंद करूंगा। निष्कपट, श्रद्धा, निःस्वार्थ भक्ति और सेवा का आदर्श जैसा 'बा' में दिखता था, वैसा मुझे अन्यत्र कहीं भी नहीं दिखा। हमारे विवाह से ही मेरे जीवन-संग्राम में वह अचल निष्ठा से मेरे साथ खड़ी रही। वह अपने तन-मन-वचन से मेरे जीवन-कार्य को अर्पित थी, वह भी इतनी पूर्णता से कि उसकी मिसाल नहीं। निदान मेरी पत्नी ही अहिंसाशास्त्र की मेरी गुरु बनी।'' यह स्वयं गांधीजी ने लिख रखा है।

बापू अपनी पत्नी को 'बा' कहते थे और कस्तूरबा गांधीजी को 'बापू' कहती थीं। यह शुद्ध अनाचार है, ऐसा कहने वाले 'बुद्धिमान' आज भी हैं! गुजराती में 'बा' यानी माँ और 'बापू' यानी 'पिता' होता है। पति पत्नी को 'माँ' कहे और पत्नी पति को 'पिता' कहे, यह उन बौद्धिकों के मतानुसार शुद्ध अनाचार है। गांधीजी का आश्रम था, चार दीवारों का परिवार नहीं था। जैसे कम्युनिस्टों के 'कम्यून' में माँ, पिता, पति, पत्नी, पुत्र, भाई, बहन सभी 'कामरेड' होते हैं, वैसे ही गांधीजी के आश्रम में कौटुम्बिकता थी, तो भी कौटुम्बिक नाते नहीं थे। अतः सभी माताएँ और सभी पिता थे। अपने पुत्र की माँ कहकर अपनी पत्नी की ओर देखने की दृष्टि सबसे उदात्त और सुसंस्कृत मानी जाती है। इसलिए 'मातृत्व भावना' कौटुम्बिक भावना का परम उदात्त शिखर है। पार्वती और परमेश्वर अर्थात माता और पिता का उल्लेख कालिदास ने 'पितरौ' इस एक ही पद से किया है। ऐसा वह कभी 'मातरौ' पद से भी होगा। इसमें द्विवचन है, तो भी भावना एकत्व की है, ऐसा दादा धर्माधिकारी ने 'बा' यह पद उदात्त और मूलभूत संकेत कैसे है, यह बता दिया है। परन्तु नर-मादा के सिवा जिन्हें स्त्री-पुरुष की ओर देखना ही नहीं आता, वे इसे कभी समझ ही नहीं सकेंगे। →

गांधी शांति प्रतिष्ठान व्याख्यान-2013

गांधी के बाद अहिंसक प्रतिकार

गतांक का शेष...

❑ प्रो. कृष्णनाथ

गांधी के बाद अहिंसक प्रतिकार के निरूपण की दो पद्धतियां सूझती हैं; एक तो वर्णन-विश्लेषण, और दूसरा सिद्धांत विश्लेषण। वर्णन-विश्लेषण के लिए जितनी सामग्री चाहिए और जितनी फुर्सत चाहिए वह आज कहां! यहां सब कुछ है, किन्तु समय की दरिद्रता के कारण सब अकारथ हो जाता है। किसको आज फुर्सत है कि वह यह सारा बखान करे और सुने। इसलिए वर्णन-विश्लेषण के बजाय जो सिद्धांत विश्लेषण है, सत्याग्रह के सिद्धांत और उस पर उठाई गई आपत्तियां—उनको ही संक्षेप में शायद कहा-सुना जा सकता है।

फिर भी अहिंसक प्रतिकार के एक प्रयोग का जिक्र करने की इजाजत चाहूंगा। वह आज से कोई पचास-पचपन साल पहले का है। वह है घेरा डालो आंदोलन। सन् 1958 में बिहार के एक जिले पलामू में हम लोग आदिवासियों के बीच उनके संघर्षों में और उसके सपनों में उनके साथ एकाकार हो रहे थे। अब तो वह झारखंड प्रदेश का अंग है। उन दिनों पलामू बिहार का एक दुर्गम जिला था। वहां के भी एक अंतर्प्रदेश रंका में बिहार और मध्य प्रदेश की सीमा पर आदिवासियों की एक सभा बुलायी गयी। वह सभा किसी सभा के लिए नहीं थी। उन दिनों पूरा छोटा नागपुर का आदिवासी इलाका भयंकर अकाल की चपेट में था। अन्न का तो सवाल ही नहीं, पानी का भी अकाल था। वह दिन मुझे नहीं भूलता। उस दिन हम लोग 18 किलोमीटर से भी ऊपर चले। जंगल में आग लगी हुई थी। पेड़-पौधे, जानवर जल रहे थे। सब रूप जल रहा था, वेदना जल रही थी, संज्ञा जल रही थी, संस्कृति जल रही थी, संस्कार जल रहे थे। और उसे बुझाने के लिए एक बूंद पानी भी कहीं नहीं था।

मध्य प्रदेश के भीलवाड़े की भाषा में उसे दुष्काल बोला जाता था। दुष्काल में हम लोगों ने कुछ मांगें तैयार कीं। आदिवासियों की सभा बुलाई कि इन मांगों के लिए हम लोग एक बड़ा आंदोलन करेंगे और इनको पूरा किए बिना यहां जीवन सम्भव नहीं। हम लोगों ने जब सभा खतम की, जब सभा विसर्जित हुई, तो आदिवासियों ने घेर लिया कि वह आंदोलन कब करेंगे? यह सब तो यहां हम झेल रहे हैं और वापस कहां जाएं, क्या खाएं-क्या पीएं। तो जो कुछ करना है अभी करिए और आज करिए।

उस समय हम लोगों ने उन्हें बार-बार समझाया कि बड़े आंदोलन के लिए बड़ी तैयारी की जरूरत होती है और बड़े साधन जुटाने होते हैं। और तैयारी के साथ इस दुष्काल से लड़ेंगे। तो उन्होंने कहा कि वह तैयारी कब करेंगे, उसका समय कहां है? जो कुछ करना है आज करिए। अब उनके इस शिद्दत से किये गए और भोगे गए सत्य के आगे हमारी सारी दलीलें व्यर्थ थीं। इसलिए जल्दी-जल्दी वहीं मित्रों ने आपस में सलाह मशविरा किया। आज वे मित्र नहीं हैं, तो उनका स्मरण आता है। केशव शास्त्री, वह काशी विद्यापीठ के ही शास्त्री थे और अपने अध्ययन काल से मुझसे परिचित थे, और पलामू के और बाद में बिहार के एक नेता पूरनचंद और हम लोग उसके संयोजकों में थे। और भी सहयोगी थे, बिलाल सिद्दीकी थे, पूरन चंद्र पाठक थे। मामा बालेश्वर दयाल भी उस सभा के लिए आये हुए थे। तो जल्दी-जल्दी में यह तय हुआ कि अब तो इसे टाला नहीं जा सकता। भूख की आग में सब जल रहे हैं। अन्न, जल और सारा कुछ का जिम्मा ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर का था, बी डी ओ के जिम्मे। विकास प्रखंड शुरू हो चुके थे, और एक विकास प्रखंड वहां भी चालू था। तो यह तय हुआ कि हम लोग बी डी ओ के यहां चलें। उनके सामने अपनी विपदा कहें और इसका कुछ हल ढूंढने की कोशिश करें।

जब हम वहां पहुँचे तो पता चला कि बी डी ओ साहब तो वहां नहीं हैं। तो भीड़ ने कहा कि बी डी ओ नहीं हैं, तो उनका परिवार तो है। हम उनके परिवार को घेरेंगे। मुझे तत्काल यह सूझा कि भाई, इसमें बी डी ओ के परिवार का क्या लेना-देना। यह तो उनके साथ ज्यादती होगी। इसलिए आपस में मशविरा करके हम लोगों ने जल्दी से तय किया कि इस भीड़ को—और वह बड़ी भीड़ थी—उत्पात करने के लिए छोड़ना ठीक नहीं है। उन्हें लेकर हम लोग रंका थाने की ओर बढ़े। वहां खलबली मच गयी। इतनी बड़ी भीड़ और वह भी अधनंगी भीड़। जो

→ 'बा' बापू की सहधर्मचारिणी थी, अनुयायिनी नहीं थी। पतिनिष्ठा से महात्माजी के विचारों के प्रति उसकी निष्ठा अधिक थी। बापू ने कभी-कभी 'बा' के साथ पति जैसा बरताव किया, फिर भी 'बा' की निष्ठा कायम रही, क्योंकि वे विचारों से उनसे एकरूप हो गयी थीं। पुत्र हरिलाल भाई के विषय में भी पुत्र की अपेक्षा तथ्यों पर 'बा' अटल रहीं। यह सब अग्निदिव्य था, पर उसमें से कस्तूरबा तपकर बाहर निकलीं। इसी कारण वे सबकी 'बा' थीं। मातृहृदयी साने गुरुजी की भाषा में ''बा-बापू नवभारत के दोनों माँ-बाप थे। कस्तूरी की तरह उनका जीवन सुगंधित था। हे माँ, तेरा उस बंदीगृह में मरण हम कैसे भूलें? वह पुण्य समाधि भारत का तीर्थक्षेत्र है। बा-बापू का जीवन राष्ट्र की अमर पुण्य पूँजी है, निधि है!'' साने गुरुजी के इन शब्दों में 'बा' का पुण्य जीवन समाहित है। यह पुण्य पूँजी ही खरी-सच्ची संपत्ति है, निधि है। वह सदैव वृद्धि को प्राप्त होती रहे, यही अपेक्षा है। *('स्त्री-शक्ति विमर्श' से)*

थोड़े से पहरा देते सिपाही और दारोगा थे, वे आनन-फानन में आए। वहां कुछ राइफलें और अन्य शस्त्र इस्तेमाल के लिए और इस्तेमाल से ज्यादा शक्ति प्रदर्शन के लिए रखे गये थे। राइफलें वगैरह बरामदे में ही पड़ी हुई थीं। पता नहीं कहां से भीड़ में सहसा उन राइफलों को लूटने की बात चलने लगी। यह हिंसा कहां बसती है, कहां उपजती है, कहां संस्कारों में दबी-छुपी है, रची-बसी है, पता नहीं। भीड़ उनकी ओर झपटने को थी, और इस पर तो पूरा थाना आक्रामक सुरक्षा की मुद्रा में आ गया। और थानेदार ने कहा कि यह तो नहीं हो सकता। ये तो सरकारी हथियार हैं, आप लोग यह तो न होने दीजिए।

हम लोगों में जो अहिंसा का संस्कार रहा हो या जो स्थिति की जरूरत थी, उसमें यह सहसा लगा हो कि इन हथियारों का लूटा जाना तो ठीक नहीं है। उनके गलत हाथों में पड़ने का बड़ा अंदेशा है। यह हमारा तरीका तो नहीं है। हमारा तरीका तो आखिर गांधी का तरीका है और उसमें हथियार के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। तो हम लोगों ने दबंग आवाज में और डपटकर उन लोगों को यह करने से बरजा। भीड़ के साथ हम लोगों का एक रागात्मक संबंध बन गया था। वरना सिर्फ हम लोगों के बोलने का असर तो नहीं होता। वे शब्द तो हवा में बिखर गये होंगे। लेकिन उन लोगों ने हम लोगों की बात मानकर हथियारों को अपनी जगह पर रख दिया और उस बरामदे से नीचे उतर गये।

अब वह थाना और उसकी सीमा और हम। संयोग से वह दारोगा भी उन्हीं आदिवासियों में से एक था। जो कुछ आरक्षण की व्यवस्था थी, उनमें से गुजर कर और अपनी थोड़ी-बहुत पढ़ाई और संपर्कों के आधार पर वह वहां तक पहुंचकर दारोगा बना था। उसको भी अपने भाई बिरादरों का दर्द मालूम था। हालांकि वह उनका अंग नहीं था और उसका काम भी दूसरी तरह का था, यानी दबा कर रखने का था। फिर भी कहीं न कहीं भीतर से, उसके अंतर्मन में अंतरसलिला की तरह यह भाव तो रहा ही होगा। वह आकर हम लोगों के बीच में बैठा और उसने कहा कि यह मैं जानता हूं कि भारी मुसीबत है। लेकिन बताइए कि मैं क्या करूं? मेरे पास तो इनको देने के लिए कुछ भी नहीं है, और फिर यह तो थाना है।

हम लोगों ने उससे कहा कि आप तो बिहार सरकार के प्रतिनिधि हैं। आप अपनी सरकार को खबर दीजिए कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है। लोग भूख से मर रहे हैं। सूचनाएं हम लोगों के पास आ रही थीं। यह भूख औरों को भी निगलने वाली है। इसलिए कुछ राहत तुरंत जरूरी है।

उन दिनों आज की तरह मोबाइल का चलन नहीं था और वहां पर बेतार के तार की भी कोई सुविधा नहीं थी। टेलीफोन भी उस इलाके में कहां। तो उसके पास संदेश पठाने का कोई जरिया नहीं था। एक दुर्गम जिले का भी एक दुर्गम खंड था वह। तो उसने जो आखिरी बस जाती है गढ़वा, तहसील के मुख्यालय, रंका थाने की ओर से अर्धसरकारी या सरकारी पत्र गढ़वा में तहसीलदार को वहां की स्थिति बताने के लिए भेजा। उसने पत्र के जरिये जो कुछ हो सकता है, उसकी चेष्टा की और क्या कुछ हो सकता है इसके लिए हम लोगों ने जल्दी-जल्दी एक सूची बनायी। अपने वचन के मुताबिक वह संदेश रंका से गढ़वा पठाया। शायद बस के चालक वगैरह और यात्रियों ने यह खबर वहां पहुंचाई। जहां संचार के साधन नहीं होते, वहां कैसे बिना साधन के जैसे जंगल की आग की तरह खबर फैल जाती है—यह आज तक भी मेरी समझ में नहीं आया है। संचार संस्थानों के विद्यार्थी इसकी खोज कर सकते हैं। उस भूख की लपट और प्रदर्शन की उग्रता गढ़वा तक पहुंची। रात भर हम लोग वहीं घेरा डाले रहे। सुबह गढ़वा से अफसरों का एक दल जीपों में भरकर रंका पहुंच गया। फिर उनसे बातचीत शुरू हुई। और कुछ लोग जो बिलकुल ही असहाय थे और काम नहीं कर सकते थे, उनके लिए एक रिलीफ कार्ड, लाल कार्ड जारी किया गया। जो काम कर सकते थे, उनको काम में लगाने के लिए योजना जो चल रही थी, उसमें शरीक करने की बात हुई। पानी के टैंकर जैसी चीज तो तुरंत मुहैया कराने की बात हुई।

यह अहिंसात्मक प्रतिकार सत्याग्रह का एक प्रकार था। यह बिलकुल नया प्रकार नहीं था। इसे धरना कहते हैं। गांधीजी के दिनों में भी एक नमक गोदाम पर, शायद धरसाना में लोग धरने पर बैठ गये थे। तो वह धरना का ही एक रूप था। मुझे यह जरूर थोड़ा कष्ट है कि घेराव पूरी तरह से अपने शुद्ध रूप में अहिंसात्मक नहीं रहा। शुद्ध रूप में कौन-सी वस्तु रहती है? आकाश से निर्मल जल बरसता है, और वह निर्मल जल आकाश की ही धूल और गर्द, गुबार लेकर वहीं से मैला होने लगता है और फिर पृथ्वी पर पड़कर तो वह कीचड़-कादो वगैरह में बदल जाता है। उसमें से भी वह बहता रहता है। उसमें वह निर्मलता तो नहीं रह पाती, लेकिन फिर भी पृथ्वी का और वनस्पति का सिंचन करता है, प्राणों का सिंचन करता है। और उससे फिर यह जल नया होता है। पुनर्नवा होता है। तो इस तरह अगर बिलकुल अपने शुरू रूप में ही उसको आकाश में ही रहने के लिए अभिशप्त कर दिया जाए तो सारी पृथ्वी तप्त अग्निपिंड की तरह फिर से हो जायेगी। यह उदाहरण एक प्रकार का वर्णन विश्लेषण हुआ।

अब सिद्धांत विश्लेषण करते हैं। यह कोई भारी भरकम सिद्धांत नहीं है। जैसे अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र में भारी भरकम थ्योरी होती है, वैसा कोई बखान मैं नहीं करने जा रहा हूं। वह सत्याग्रह के ही क्रम में उपजी हुई कुछ गुत्थियां हैं। कुछ उसके खिलाफ आपत्तियां हैं। तो उन्हें पूर्वपक्ष में रखकर फिर उनका खंडन करके और सत्याग्रह के पक्ष को पुष्ट करने की पद्धति से इनमें से कुछ का मैं जिक्र करना चाहूंगा।

उनमें से एक जो शुरू-शुरू में हम लोगों को सुनने में आती थी, वह यह थी

कि जब ब्रिटिश राज था तो उसके खिलाफ आंदोलन की जरूरत थी। गांधीजी ने सत्याग्रह, सिविलनाफरमानी और असहयोग वगैरह चलाया और वह सब हुआ। अब तो स्वराज आ गया। अब जब स्वराज आ गया और अंग्रेज यहां से चले गए, तो अब सत्याग्रह की क्या आवश्यकता? अब आप किसके खिलाफ सत्याग्रह करते हैं।

वैसे गांधीजी ने इस सब प्रश्नों का पहले ही उत्तर दिया है। तो भी ऐसे प्रश्न बार-बार उठते हैं और उनके उत्तर भी बार-बार दिए जाते हैं। ये सिलसिला न जाने कब से चला आ रहा है। ये प्रश्न भी हैं और ये उत्तर भी हैं।

सविनय अवज्ञा आत्मसम्मानपूर्वक जीने की एक शर्त है, एक अनिवार्य शर्त है। अगर किसी देश-काल में, किसी शासन पद्धति में, किसी व्यवस्था में, उसमें जो निहित अन्याय है, उसको देखकर, उसका हम प्रतिकार नहीं करते, असत्य का अगर प्रतिकार नहीं करते तो वह जहरीला हो जाता है। वह अपनी आत्मा में और समाज की आत्मा में और सरकार में, अगर सरकार की कोई आत्मा हो तो, उसमें एक बुराई पैदा करता है और उस बुराई का कोई अंत नहीं है। अन्याय का तत्क्षण प्रतिकार तो एक आम सिद्धांत है और वह इसका आधार है। वह क्षण घड़ी वाला क्षण नहीं है। वह क्षण कभी-कभी विशेषकर के सामूहिक प्रतिकार के मामलों में थोड़ा स्थगित किया जा सकता है। ऐसा न समझें कि वह अन्याय हुआ और उसका उसी क्षण प्रतिकार नहीं हुआ, तो उससे अपने को ही ऐसी ग्लानि हुई और ऐसी ठेस लगी, ऐसा नासूर मान लिया कि वह फिर सत्याग्रही को ही नष्ट कर दे। क्षण का अर्थ ऐसा नहीं है।

फिर यह प्रश्न भी उठाया जाता है कि इस सत्याग्रह के अस्त्र का दुरुपयोग हो सकता है। यह आपत्ति बिलकुल सही है। सत्याग्रह के नाम का और उसके अस्त्र का बहुत सारा दुरुपयोग हम अपनी आंखों के सामने देख रहे हैं। हर कोई अपनी जायज-नाजायज मांग के लिए आंदोलन करता है और उसे सत्याग्रह का नाम दे देता है। और समझता है कि इस नाम के साथ सब कुछ चलता है। यह प्रवृत्ति गांधीजी के बाद, और कुछ हद तक गांधीजी के रहते हुए भी उनके आंदोलनों में कहीं दबी-छिपी पड़ी रहती थी। लेकिन जब वह गांधीजी के देखने में आती थी, जैसे चौरी-चौरा कांड हुआ, तो गांधीजी ने उस आंदोलन को स्थगित कर दिया। किन्तु उनके जाने के बाद तो अपने देश में यह प्रवृत्ति बहुत बढ़ गयी है। जिन्हें सत्याग्रह में नैतिक रूप में कोई विश्वास नहीं है, बल्कि एक रणनीति के तौर पर वे इसे अपनाने को एक तरह से विवश हुए हैं, वे उसे सत्याग्रह का नाम देकर उसे गौरवान्वित करने की चेष्टा करते हैं। लेकिन सत्याग्रह का दुरुपयोग हो सकता है, इसलिए सत्याग्रह न हो—यह कौन-सा तर्क है?

एक अन्य बात का जिक्र करना चाहूंगा। सत्याग्रह का एक नैतिक आधार है। यह आत्मा की शक्ति है, यह सत्य की शक्ति है, और सत्य व पवित्रता का भाव इसको बल देता है। वह बल इसका दृढ़ नैतिक आधार है। लेकिन उस दृढ़ नैतिक आधार में आस्था कम ही लोगों की होती है। ज्यादातर लोग इसे रणनीति के तौर पर अपनाते हैं। और चूंकि खासतौर से हमारे देश में हम लोग एक तरह से निकम्मे लोग हैं, बुजदिल लोग हैं, हथियार उठा नहीं सकते, इसलिए सत्याग्रह की बात करते हैं। एक मुहावरा-सा चल गया है कि लाचारी का, मजबूरी का नाम महात्मा गांधी। तो लाचारी का नाम सत्याग्रह है, इस भाव से जो निर्बल की अहिंसा के रूप में इसका इस्तेमाल करते हैं, वे इसकी नैतिक शक्ति को खो देते हैं। इस नैतिक शक्ति के बिना सत्याग्रह का आधार नहीं है।

लेकिन मैं ऐसा समझता हूं कि संसार की जितनी भी चीजें हैं, वे ऐसे ही गुण-दोषमय होती हैं। बाबा तुलसीदास कह गये हैं—'जड़-चेतन गुण-दोषमय, विश्व कीन करतार संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।' यानी जो संसार है वह गुणदोष मय है। यहां गुण भी है और दोष भी है। ऐसी ही सृष्टि और रचना हमें मिली हुई है। इसमें से जो संत हैं, समझदार हैं, जो संवेदनशील हैं, वे उस मिले हुए दूध-पानी में से दूध को तो ले लेते हैं और पानी को छोड़ देते हैं। तो जो बुराई है उसे छोड़ते हैं, और उसमें जो अच्छाई है उसे ले लेते हैं। इसलिए सत्याग्रह के प्रयोग में या अहिंसात्मक प्रतिकार के प्रयोग में जो मानी हुई बुराइयां आ गयी हैं, उनका कोई भी समझदार आदमी समर्थन नहीं करेगा। किन्तु इसके कारण सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र को ही खारिज कर दिया जाए, तो एक बड़ी हानि मनुष्य जाति की होने को है।

एक और जो प्रश्न इस सिलसिले में रह जाता है, उसका जिक्र अगर मैं न करूं तो मुझे लगेगा कि कुछ बात आधी-अधूरी रह गयी और मैं उसे बचाकर निकल-सा गया। कुछ अच्छे-भले मानस, अच्छे साधु-संत व विचारक की यह आपत्ति रही है कि अहिंसा की प्रतिष्ठा की एक शर्त यह है कि उसके प्रयोग में सामने वाले में हिंसा न उपजे। यह प्रतिकार अहिंसात्मक है। उसका आधार सत्य और अहिंसा है और उसकी एक शर्त है कि वह सौम्य हो, सौम्यतर और सौम्यतम होता जाए। ऐसा हो जाए कि इससे सामने वाले में क्रोध न उपजे। अगर उसमें से क्रोध उपजता है, तो कहीं सत्याग्रह में खोट है।

यह तर्क सुनने में बड़ा अच्छा लगता है। लेकिन अगर आप इसकी परीक्षा करें तो इसमें अन्याय के अहिंसक प्रतिकार को करीब-करीब स्थगित करने की युक्ति है। इसमें वह निहित है। यह तो सही है कि जो अहिंसा का प्रयोग करता है, उस प्रयोगकर्ता के मन में क्रोध न उपजे। इसको तो वह देख सकता है कि उसमें क्रोध आता है, और उससे अगर वह अपनी अहिंसा की निष्ठा से विचलित होता है, तो वह समझ में आता है। लेकिन सामने वाले में, जिसके निहित स्वार्थों को ठेस लगती है, जिसके हितों को वह विसर्जित होते हुए देखता है, उसमें भी क्रोध न उपजे और इसको शर्त मान लेना, यह एक ज्यादती मालूम पड़ती है। इतिहास का अनुभव यह है कि जिन्होंने भी एक प्रचलित रूढ़ि और अन्याय

व अव्यवस्था के खिलाफ विद्रोह किया, उनके सामने वालों में जबरदस्त क्रोध उपजा। यह किस्सा इतिहास पुराण में भी आप देखते हैं। प्रह्लाद के प्रति उसके पिता में, सुकरात के प्रति एथेंस के नगर गणराज्य में, ईसा मसीह के प्रति उनके ही यहूदी और रोमन शासकों में और हाल में तो मार्टिन लूथर किंग की हत्या में आप एक सिलसिला देख सकते हैं कि कुछ हल्का-फुल्का क्रोध नहीं, ऐसा क्रोध उपजा जिसमें उनकी हत्या ही कर दी गयी। और कोई उदाहरण क्यों लें, गांधीजी की तो खुद हत्या हुई। इसी दिल्ली में उनको उस अवस्था में गोली मार दी गयी, जब वे प्रार्थना-सभा में जा रहे थे। वह सब आपकी आंखों के सामने से गुजर जाता है, जब कभी उस प्रांगण में आप जाते हैं, तो वह सब जाग्रत प्रमाण आप अभी भी देखते हैं, वह रक्त-रंजित चादर और गोली के निशान वगैरह इसके ताजा साक्ष्य हैं कि इसकी कोई गारंटी नहीं की जा सकती कि सामने वाले में क्रोध नहीं ही होगा।

और अगर क्रोध उपजता है तो उसकी आशंका के कारण अन्याय के अहिंसक प्रतिकार से वह विरत रहता है, तो मैं समझता हूं कि सत्याग्रही अपने धर्म से च्युत होता है। इस च्युति को कभी भी इस कल्पना में स्थान का अवकाश कम से कम मैं नहीं देखता और मेरे सौम्य, सौम्यतर, सौम्यतम मित्र ऐसा मानते हों तो मैं उनसे बरजता नहीं और न उनकी आस्था से उनको हिलाना ठीक समझता हूं। मैं सिर्फ यह कहूंगा कि इन सब सैद्धांतिक आपत्तियों, विश्लेषण और वर्णन-विश्लेषण, इनको समझते हुए उनमें से अगर कोई संदेश निकलता है तो यह कि हम सत्य, सत् जो है उसको निरंजन आंखों से, बिना अंजन लगी आंखों से, सीधे-साक्षात् देखें। और उसमें से जो गलत लगे उसे गलत और जो सही लगे उसे सही कहें। उसमें से अन्याय दिखे तो उस अन्याय का तत्क्षण प्रतिकार करने को अपने को तैयार रखें। तभी सत्याग्रह की और उस पर बात करने की कोई सार्थकता है, अन्यथा नहीं। ❑

जन-आन्दोलनों का औचित्य

❑ आदिल सरफरोश

देश में सिविल सोसाइटीज द्वारा समय-समय पर आयोजित किये जाने वाले जन-आन्दोलनों के औचित्य को लेकर तमाम तरह के सवाल उठाये जाते रहे हैं। मसलन क्या इन आंदोलनों से वास्तव में बदलाव की बयार आयेगी? क्या ये आंदोलन अपने लक्ष्य में कारगर सिद्ध हों पायेंगे? जितने मुँह उतनी बातें! लेकिन आज के परिवेश में इन आंदोलनों की प्रासंगिकता को समझकर निष्कर्ष निकालना बहुत आवश्यक है।

सम्बन्धित सरकारों ने जन-आंदोलनों को दबाने के हर सम्भव प्रयास किये हैं। वहीं पत्रकारिता एवं मीडिया-जगत ने जन-आंदोलनों को हाइलाइट करके देशवासियों को इनसे जोड़ने का सराहनीय सार्थक प्रयास किया है। एक ओर सत्ता-लोभी नेताओं ने जन-आंदोलनों और उससे जुड़े सामाजिक कार्यकर्ताओं को बिन पेंदी का लोटा कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी, तो दूसरी ओर बुद्धिजीवी वर्ग और युवाओं ने जन-आंदोलनों में अपनी आस्था और विश्वास जताते हुए आंधियों में बरगद के पेड़ की तरह डटकर उनका साथ दिया है। लेकिन घुमा-फिराकर सवाल वहीं का वहीं है कि क्या लोकतंत्र को बेहतर बनाने के लिए जन-आंदोलन उचित हैं?

जन-आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में मैं अपने देश के दो प्रथम नागरिकों के स्टेटमेंट (कथन) का जिक्र करना ठीक समझता हूं। वर्ष 2012 में तत्कालीन राष्ट्रपति माननीया प्रतिभा देवी सिंह पाटिल ने अण्णा के जन-लोकपाल आंदोलन को आधार बनाकर कहा था कि खराब फलों को गिराने के लिए पेड़ों को इतना न हिलाया जाये कि वह जड़ से उखड़ जाये। उन्होंने अपने इस वक्तव्य के माध्यम से अण्णा आंदोलन सरीखे आंदोलनों को लोकतंत्र के लिए खतरे का अंदेशा अभिव्यक्त किया था। उस समय मैंने अपने एक लेख में माननीय राष्ट्रपति महोदया के वक्तव्य पर पलटवार करते हुए लिखा था कि जब जनता द्वारा चुने गये जन प्रतिनिधि संसद में पहुँचकर जनता के विचारों को दरकिनार करें तथा सिर्फ अपनी मनमानी करें, तो ऐसी स्थिति में जन-आंदोलन के सिवा कोई अहिंसावादी रास्ता भी तो नहीं है। खैर छोड़िये। स्थिति और समय के लिहाज से अपना-अपना नजरिया होता है।

हाल ही में वर्तमान राष्ट्रपति माननीय प्रणब मुखर्जी ने खुफिया एजेंसी आई. बी. के विशेष समारोह में अपने भाषण में साफ कहा कि जन-आंदोलनों ने लोकतंत्र में नया आयाम जोड़ा है। राष्ट्रपति के मुताबिक कानून बनाने के लिए सरकार को मजबूर करने वाले इन जन-आंदोलनों को नजरअन्दाज करना तथा सड़कों पर उतरकर सरकार को कानून बनाने के लिए बाध्य करने वाले इन आंदोलनों को क्षणभंगुर समझना बड़ी गलती होगी। भारत के लोकतंत्र में इस तरह के जन-आंदोलन अभी लम्बा रास्ता तय करेंगे। राष्ट्रपति ने लोकपाल और दिल्ली में युवती के साथ हुए बर्बर व्यवहार के बाद पारित हुए नये कानून का नाम तो नहीं लिया; लेकिन उनका इशारा साफ इसी ओर था। इन्होंने यह भी साफ कहा कि देश की जनता ने जन-आंदोलनों से जुड़कर सिविल सोसाइटी की पहल को वैधता दी है।

देश के दोनों प्रथम नागरिकों के स्टेटमेंट सुनने और समझने के बाद मुझे लगता है कि हमें वर्तमान राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी के वक्तव्य का स्वागत करना चाहिए। क्योंकि यह निष्पक्ष भावना, बिना किसी राजनीतिक दबाव व परिस्थितिजन्य दिया गया भाषण है। दिल्ली में भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाकर चुनाव लड़ने वाली आप पार्टी की शानदार जीत जन आंदोलन के कारण ही सम्भव हुई है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभी एक क्रान्ति का आगाज हुआ और जल्द ही यह अपने अंजाम तक पहुंचेगी। राजनीति और अफसर शाही से शोषित और उपेक्षित जनता को न ही अब डरने की आवश्यकता है और न ही चुपचाप रहने की। हमें फिर से उम्मीदों से भरे इंकलाब जिंदाबाद का मंत्र जाप करना ही होगा।

''स्याह रात को कोई आफताब मिटायेगा।
मेरे दोस्तों अभी इंकलाब आयेगा।।'' ❑

इस डर के पीछे क्या है?

❑ संदीप पाण्डे

इधर तीन ऐसे फैसले आ गया है जिन्होंने राजनीतिक दलों की स्वच्छंद कार्यशैली पर कुछ अंकुश लगाने की मंशा व्यक्त की है। इससे तेज बहस छिड़ गयी है और राजनीतिक दल किसी भी किस्म के अनुशासन में बँधने को तैयार नहीं दिखते, लेकिन जनता की सोच अलग है।

सबसे पहले केन्द्रीय सूचना आयोग में 2 जून के एक फैसले में राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त छह दलों—कांग्रेस, भाजपा, माकपा, भाकपा, रा. कां. पा. व बसपा को सूचना के अधिकार के दायरे में लाते हुए उन्हें अपना आय-व्यय सार्वजनिक करने को कहा तथा छह हफ्तों में अपना-अपना जन सूचना अधिकारी नियुक्त करने को कहा, जिसके पास लोग सूचना मांगने का आवेदन भेज सकें। आयोग का तर्क यह था कि चूंकि इन दलों को केन्द्रीय सरकार द्वारा काफी सहायता मिली है, अतः इन पर सूचना के अधिकार अधिनियम की धारा 2 (एच) लागू होती है। इसके अलावा उसका कहना था कि चूंकि सत्ता में रहने पर ये दल तमाम राज्य के अंगों को नियंत्रित करते हैं जिन पर सूचना का अधिकार अधिनियम लागू है; अतः इन्हें खुद को भी इस कानून के दायरे में रखना चाहिए।

किन्तु राजनीतिक दलों ने लगभग एक स्वर में इस फैसले का विरोध किया है। सिर्फ एक दल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अपना हिसाब-किताब सार्वजनिक करने को तैयार हुआ। माकपा को पिछले पांच सालों में रु. 31,362 रुपये चंदे में मिले हैं, जिनमें सिर्फ बीस हजार रुपये से अधिक दान को ही शामिल किया गया है। भाकपा के अलावा पांच दलों में से किसी ने भी अपना हिसाब-किताब नहीं दिया और न ही किसी ने दी गयी अवधि में जन सूचना अधिकारी नियुक्त किया। ज्ञात हो कि भाकपा ने भी, जिसने हिसाब तो दिया, इस फैसले का विरोध ही किया है।

आखिर क्या वजह है कि हमारे राजनीतिक दल अपनी आय के स्रोत या पैसा कैसे खर्च किया यह जनता से छुपाना चाहते हैं। चुनाव आयोग की सीमा से ऊपर का पैसा कहां से आया और कहां गया, इसका कोई हिसाब कागज पर नहीं होता। यह काला धन है। विदेशों में जमा काला धन तो एक बार भ्रष्टाचार होने के बाद वहां निष्क्रिय है, किन्तु हमारी अर्थ-व्यवस्था में सक्रिय काले धन की भूमिका ज्यादा खतरनाक है क्योंकि यह वह काला धन है जो हमारी संसद और विधान सभाओं में तमाम अवांछनीय लोगों को पहुँचा रहा है। हालांकि यह पैसा चूंकि कागज पर नहीं दिखाया जाता, तो सूचना मांगने पर भी इसकी जानकारी नहीं मिलेगी। लेकिन सूचना मिलने पर यह अंदाज लगेगा कि कौन पार्टी कितना भ्रष्टाचार का पैसा या काला धन चुनाव में लगा रही है। दूसरा, अब यह भी खुला सच है कि बहुत सारी देशी-विदेशी कम्पनियां या ठेकेदार अपना काम करवाने के लिए हमारे नेताओं और नौकरशाहों को मालामाल कर देते हैं। यह पहले भी होता था लेकिन उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं निजीकरण की आर्थिक नीतियां लागू होने के बाद से ज्यादा निर्लज्ज तरीके से होने लगा हैं। इसका अंदाजा जो बड़े घोटाले पिछले कुछ वर्षों में उजागर हुए उनसे लगाया जा सकता है। यह पैसा तो पार्टी के नाम पर ही लिया जाता है। देखा जाए तो हमारी विडम्बना यह है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में मुख्य राजनीतिक दलों का वित्तीय पोषण भ्रष्टाचार के पैसे से होता है। यह भी एक विडम्बना है कि मनमोहन सिंह जैसे व्यक्तिगत रूप से ईमानदार व्यक्ति ने देश की भ्रष्टतम सरकार का नेतृत्व किया है। हम उम्मीद करते हैं कि जब हमारे सामने साफ-सुथरे राजनीतिक विकल्प मौजूद होंगे, तो एक दिन जनता इन भ्रष्ट दलों को दरकिनार करेगी।

दूसरा फैसला सर्वोच्च न्यायालय का है जिसमें किसी व्यक्ति को निचली अदालत से भी सजा हो जाने पर उसे चुनाव लड़ने से वंचित कर दिया जायेगा, यह फैसला स्वागतयोग्य है क्योंकि तमाम अपराधी ऊपरी न्यायालय में अपील लम्बित होने की लम्बी अवधि में भी सांसद और विधायक बने रहते हैं। पूछा जा रहा है कि निचली अदालत से सजा होने पर और ऊपरी अदालत से बरी होने पर राजनेता को हुए नुकसान की भरपायी कैसे होगी? सवाल तो उलटा पूछा जाना चाहिए। अपील की सुनवाई होने तक अपने पदों के साथ मिलने वाली सुविधाओं का लाभ उठाने वाले या महत्त्वपूर्ण पदों पर बैठे व्यक्तियों द्वारा लिये गये फैसले उसे सजा होने पर वापस क्यों नहीं लिये जाते? फिर यदि राजनीति में आने का उद्देश्य जनता की सेवा करना ही है, तो वह तो बिना चुनाव लड़े भी की जा सकती है।

किन्तु पुलिस हिरासत या न्यायिक हिरासत में होने पर भी चुनाव लड़ने से वंचित रखने का फैसला ठीक नहीं प्रतीत होता। हमारी पुलिस की कार्यशैली ऐसी हैं कि तमाम निर्दोष लोग जेल पहुँच जाते हैं। अतः न्यायालय का फैसला आने तक आरोपी का चुनाव में मतदान करने एवं उम्मीदवार बनने का अधिकार सुरक्षित रहना चाहिए। बल्कि होना यह चाहिए कि मुकदमों का जल्दी निपटारा हो। भारत में पुलिस सुधार के साथ-साथ न्यायिक सुधार लागू होने भी अत्यन्त जरूरी हैं। जिन समस्याओं से हम जूझ रहे हैं उनके मूल में इन व्यवस्थाओं का ठीक से काम न करना है।

उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय का यह फैसला कि राजनीतिक दल जाति आधारित सभाएँ आयोजित नहीं कर सकते, है तो अच्छा फैसला; लेकिन इस तरह का फैसला साम्प्रदायिक राजनीति पर भी लागू होना चाहिए। यदि कोई जाति के आधार पर राजनीति नहीं कर सकता, तो कोई धर्म के नाम पर कैसे कर सकता है? आने वाले लोकसभा चुनाव में आशंका इस बात की ही है कि चुनाव साम्प्रदायिकता व धर्मनिरपेक्षता के आधार पर हुए ध्रुवीकरण से प्रभावित होगा, और जरूरी मुद्दे जैसे बढ़ती महंगाई, गरीबी, बेरोजगारी आदि मुद्दे चुनावी चर्चा से गायब रहेंगे। यह चुनाव आयोग को सोचना चाहिए कि चुनाव एकांगी न हो जाए, इसके लिए क्या किया जाए? अन्ततः तो मतदाता को ही तय करना है कि भावनात्मक मुद्दों की हवा में वह बह जायेगा, अथवा अपनी जिन्दगी को प्रभावित करने वाले वास्तविक मुददों को राजनीतिक मुद्दे बनायेगा। ❑

जलवायु पर नया समझौता

❑ मार्टिन खोर

पोलैंड के वारसा शहर में पिछले दिनों समाप्त हुए संयुक्त राष्ट्र संघ जलवायु सम्मेलन के अंत में देशों के बीच हुए गहन विचार-विमर्श के पश्चात समुद्री तूफानों, बाढ़, अकाल और जलवायु परिवर्तन के अन्य प्रभावों से पीड़ितों के लिए नई प्रणाली बनाये जाने पर सहमति बन गयी है। इस ऐतिहासिक फैसले ने मौसम संबंधी अतिवादी घटनाओं और शनैः शनैः होने वाली खतरनाक घटनाओं से प्रभावित देशों को मदद करने के प्रयासों के लिए अंतर्राष्ट्रीय समन्वय हेतु नया मार्ग खोल दिया है। इस सम्मेलन के प्रारम्भ होने के ठीक पहले फिलीपींस के शहरों में आये समुद्री तूफान की वजह से हुई 5000 मौतों और विनाश की धुँधली पृष्ठभूमि ने इसमें भागीदारी करने वालों को ''हानि और विध्वंस'' से निपटने की प्रणाली बनाने में मदद की थी।

इस नई प्रणाली से उम्मीद की गयी है कि वह देशों को तकनीकी सहयोग उपलब्ध कराकर संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन के साथ ही अन्य संगठनों के भीतर बेहतर समन्वय का प्रयास करेगी। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि यह जलवायु परिवर्तन प्रभावों से संबंधित हानि एवं विध्वंस से निपटने में धन इकट्ठा करने, तकनीक एवं क्षमता निर्माण गतिविधियों में भी मदद करेगी। अभी भी अधिकारिक संयुक्त राष्ट्र मानवीय सम्मेलन अपनी संबंधित एजेंसियों के साथ ही स्वयंसेवी समूहों जैसे रेडक्रॉस, मेडिसिन सेंस फ्रंटियर्स एवं ऑक्सफेम जब भी कोई विध्वंस जैसे फिलिपींस का समुद्री तूफान, 2004 की एशियाई सुनामी या हैती में भूकंप आता है तो सक्रिय हो जाते हैं। धन भी उसी समय इकट्ठा किया जाता है जब ऐसी घटना घटित होती है और ऐसे कार्य में काफी समय भी लगता है। इतना ही नहीं प्रभावित देश तब तक इतने बर्बाद हो चुके होते हैं या पहले से ही गरीब रहते हैं कि वे त्वरित प्रतिक्रिया भी नहीं दे पाते।

बात फिलीपींस के समुद्री तूफान की हो या एशिया में आई सुनामी की, पीड़ितों को भोजन, स्वास्थ्य सेवाएं और रहने का स्थान उपलब्ध करवाने में कई दिन लग गये। इतना ही नहीं तहस-नहस हुए घरों, शहरों और खेतों के पुनर्निर्माण में भी बरसों-बरस लग जाते हैं। हानि एवं नुकसान प्रणाली का अर्थ है संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन, जो कि जलवायु परिवर्तन से निपटने वाली विश्व की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है, के भीतर व्याप्त सांगठनिक एवं वित्तीय खाइयों को पाटना। संयुक्त राष्ट्र का जलवायु परिवर्तन पर ढांचागत सम्मेलन वर्तमान में उत्सर्जन को कम करने या जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से निपटने की तैयारियों जैसे समुद्री किनारों पर दीवारों का निर्माण एवं ड्रेनेज प्रणाली के लिए धन उपलब्ध करवाता रहा है। लेकिन अभी तक इसे देशों को हानि एवं विध्वंस से निपटने में मदद करने संबंधी स्पष्ट अधिकार प्राप्त नहीं है। इस नई प्रणाली से संगठनों में नई ऊर्जा का संचार होगा और वे सम्मेलन एवं अन्य एजेंसियों के साथ मिलकर बेहतर राहत पहुंचा पायेंगे। हाल के वर्षों में प्राकृतिक विध्वंसों से होने वाला नुकसान 300 से 400 अरब डॉलर तक पहुंच गया है, जो कि एक दशक पूर्व 200 अरब डॉलर था।

सभागृह में प्रतिभागी तब खुशी से झूम उठे जब जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से होने वाली हानि व नुकसान से संबंधित ''वारसा अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली'' के गठन की घोषणा अंतिम समय में हुई बातचीत के माध्यम से संभव हो पायी। इस निर्णय ने दो सप्ताह से जारी सम्मेलन पर छाई निराशा को दूर कर दिया। इसके अलावा यहां से दो अन्य अच्छी खबरें भी मिलीं। पहला वन संबंधित गतिविधियों से होने वाले उत्सर्जन में कमी (इसे आर. ई. डी. डी. प्लस के नाम से भी जाना जाता है) और दूसरी विकसित देशों से उन राष्ट्रों के लिए 10 करोड़ डॉलर की मदद उन राष्ट्रों के लिए लेना जिनके संसाधन कार्बन मूल्यों में आई असाधारण कमी से एकाएक कम हो गये हैं।

वहीं विषाद की मुख्य वजह है आर्थिक मोर्चे पर उन्नति का न होना। यानी किस तरह विकासशील देशों द्वारा जलवायु संबंधी कार्य हाथ में लेने हेतु पूर्व में तयशुदा प्रति वर्ष 200 अरब डॉलर की रकम सन् 2020 तक इकट्ठा कर पाने की मुहिम चल पायेगी। अभी तक तो नाम मात्र का धन इकट्ठा हुआ है और सन् 2020 तक इस लक्ष्य को पाने की कोई रणनीति भी नहीं बनायी गयी है। इन दो हफ्तों में काफी सारी ऊर्जा उस विमर्श पर केन्द्रित रही कि आगामी दो वर्षों (डरबन मंच) तक वार्ताओं को किस प्रकार आगे ले जाया जा सके, जिससे दिसंबर 2015 में जलवायु परिवर्तन पर एक नया समझौता हो पाये। कुछ अमीर देश विकसित व विकासशील देशों के मध्य उत्सर्जन के अंतर को लेकर अपने वायदों को तोड़ने पर उतारू हैं। वहीं दूसरी ओर अनेक विकासशील देश विकसित देशों (जिनके ऊपर उच्च वैधानिक प्रतिबद्धता है) और विकासशील देशों की बढ़ती कार्यवाही (जिसे वित्त एवं तकनीक के माध्यम से मदद पहुंचायी जानी है) पर राजी न हो पाने की असमर्थता के चलते डरबन मंच कमोबेश धराशायी होने की कगार पर पहुंच गया था। आखिरी क्षणों में राष्ट्र एक तटस्थ शब्द पर तैयार हुए कि किस तरह सभी देश भविष्य में विमर्श को जारी रखने में अपना योगदान (बजाय प्रतिबद्धता के) देते रहेंगे।

विभिन्न देशों के मध्य अब लड़ाई इस बात पर है कि वे अगले वर्ष होने वाली गंभीर चर्चाओं में किस प्रकार उत्सर्जन समाप्त करने में और अनुकूल गतिविधियों में 'योगदान' करेंगे और इस हेतु वित्त एवं तकनीक जुटा पायेंगे। *(सप्रेस)*

आमंत्रित आपदा के निवारण की चुनौती

❑ विजय जड़धारी

उत्तराखण्ड के उच्च हिमालयी इलाकों में हाल ही में आयी आपदा से सारा देश चिंतित है। इस आपदा ने कुछ क्षेत्रों का भूगोल बदला तो आपदा का नया इतिहास भी रच डाला। आपदा में हुई जन-धन की हानि का सही-सही आंकड़ा न तो उजागर हुआ है, न भविष्य में इसकी साफ-साफ तस्वीर सामने आने की सम्भावना है, लेकिन अकेले केदारघाटी में 16/17 जून, 2013 को 10 हजार से अधिक लोगों का जिन्दा दफन होना निःसंदेह डराने वाला है।

इस आपदा को दैवी आपदा, हिमालय सुनामी, प्रलय, महाप्रलय, मानवजनित व व्यवस्थाजनित आपदा आदि नामों से संबोधित किया गया है। राज्य सरकार, योजनाकार, कारपोरेट सेक्टर, ब्यूरोक्रेट व टैक्नोक्रेट आदि दैवी आपदा का प्रचार कर सारा दोष प्रकृति के मत्थे मढ़ने में लगे हैं। निःसंदेह दैवी आपदा के बहाने उन्हें दोहरा लाभ पहुँच रहा है। पहली बात यह कि दैवी आपदा के बहाने पुनर्निर्माण के लिए मोटी से मोटी धनराशि राहत में मिल रही है, और दूसरी बात यह कि प्रकृति के साथ जो नाजायज छेड़-छाड़ की गयी थी, आपदा ने उसे तहस-नहस कर दिया है। आपदा को प्रथम दृष्टया देखें तो उसे देख यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सड़कें काल, तो बांध महाकाल बन कर आपदा में शरीक हुए हैं। हम माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उस आदेश के आभारी हैं जिसके अन्तर्गत नई जल विद्युत परियोजनाओं पर रोक लगायी गयी है, लेकिन बांध परियोजनाओं के कारण जो जन-धन की हानि हुई और लोगों की आजीविका उजड़ी उसके लिए जिम्मेदार लोगों को कब सजा मिलती है, इस न्याय की सबको प्रतीक्षा है। मोटे तौर पर हमें इस आपदा के निम्न कारण नजर आते हैं :—

1. जलवायु-परिवर्तन और बदलता मौसम, 2. डायनामाइट के भारी विस्फोट, 3. सड़कों की अवैज्ञानिक प्रौद्योगिकी, 4. बांध/जल-विद्युत परियोजनाओं का अंधाधुंध निर्माण, 5. नदियों के किनारे अव्यवस्थित अवैध निर्माण, 6. खनन, 7. आपदा-निवारण—क्या करें?

जलवायु परिवर्तन और बदलता मौसम : जलवायु-परिवर्तन और धोखा देता मौसम हिमालयी क्षेत्र की एक बड़ी समस्या है। जो लोग दैवी आपदा या हिमालयी सुनामी कह कर इस आपदा के लिए प्रकृति के ऊपर सारा दोष मढ़ते हैं, उनका ज्ञान हिमालय व यहां के जनजीवन के बारे में बहुत कमजोर है। बादल, बारिश एवं नदियां आदि जरूर दैवीय हैं, किन्तु एक साथ एक ही इलाके या एक ही जगह पर कभी भारी बारिश होना तो कभी सूखा पड़ना, ग्लेशियरों का टूटना या नंगा होना कतई दैवीय नहीं है। यह सब वैश्विक जलवायु-परिवर्तन के कारण हो रहा है, इसमें हमारा योगदान इतना है कि शिव की एकांत स्थली केदारनाथ एवं उच्च हिमालय जहां पहले पक्षी भी मौसम में विचरण करते थे, वहां पर हमने कुदरती जंगल काटकर कंकरीट के जंगल खड़े कर दिये और हजारों मोटर-गाड़ियां व हैलीकॉप्टरों का मजमा लगा दिया है। बड़े शहरों में हर व्यक्ति अपनी गाड़ी चाहता है। शहरों की सभ्यता प्रदूषण की सभ्यता है। यह भोगवादी व प्रदूषणकारी सभ्यता गांव व सुदूर हिमालय तक पहुँच रही है। हमारा विनाशकारी विकास का मॉडल भी इसमें सहायक है।

हिमालयी क्षेत्र की जलवायु और मौसम को पढ़ने के लिए हम यदि बुजुर्गों के पास जायें तो पता चलता है तीन-चार दशक पूर्व यहां इससे भी ज्यादा बारिश होती थी। फर्क सिर्फ इतना है तब एक मानसून था, अकेले एक स्थान पर नहीं अपितु सब जगह खूब वर्षा होती थी; अधिक वर्षा से बाढ़ें नहीं आतीं तो भला अंग्रेजी के अक्षर "V" आकार की घाटियां कैसे बनतीं? नदियों व खालों की बाढ़ के कारण ही तो इस आकार की घाटियां बनी हैं। बड़ी नदियों के अलावा यहां हजारों गैर बर्फानी नदियां हैं और ये नदियां लोगों की आजीविका का मुख्य आधार हैं, क्योंकि इनसे सिंचाई की गूलें निकाल कर लोग अपने खेतों को हरा-भरा करते हैं।

उत्तराखण्ड के लोग मानसून को चौमासा यानी चातुर्मास कहते हैं। पहले चार महीने आषाढ़, सावन, भाद्रपद व आश्विन में ज्यादा बारिश होती थी। सावन के महीने को अँधियारा महीना कहते थे, न दिन में सूरज निकलता था, न रात में चांद-तारे। एक तारा दिखाई दिया तो कहते हैं एक बिस्वा अनाज कम हो जाता था। जितनी ज्यादा बारिश हो जाए अच्छा माना जाता था। बाढ़ भले ही आती थी, नदियां जमीन को गहराई से काट कर अपने रास्ते बनाती थीं, लेकिन तब कहीं तबाही नहीं होती थी। क्योंकि बाढ़ के साथ गाद रेत बजरी नहीं होती थी।

शरद काल में भी तीन या चार महीने बारिश होती थी। मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक खूब बारिश और बर्फ पड़ती थी। जहां पहले 2-3 फुट बर्फ पड़ती थी, आज वहां बिलकुल भी बर्फ के दर्शन नहीं होते हैं। नयी पीढ़ी ने अपने गांव में बर्फ नहीं देखी है, कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन हो रहा है मध्य हिमालयी इलाकों में? यहां की अच्छी जलवायु, अच्छी बारिश व अच्छी बर्फ के कारण यहां के किसान एक जमाने में खाद्यान्न और जंगली फल-फूल व सब्जियों की उपज के कारण संपन्नता और खुशहाली के शीर्ष पर थे। चारों तरफ सुख-शांति और समृद्धि थी। इसकी जानकारी गढ़वाल के इतिहास और हिमालय गजेटियर के लेखक एटकिन्सन व अन्य अंग्रेज लेखकों के ग्रंथों में देखी जा सकती है। तब देश के लोग बद्रीनाथ, केदारनाथ व गंगोत्री की पैदल यात्रा करते थे और चट्टियों में बसेरा

करते थे; मन्दिरों के आस-पास बसना सिद्ध पीठों में वर्जित था।

आज चारों ओर भारी बारिश, भूस्खलन, बाढ़ व तबाही की चर्चा है, राहत व निर्माण की परियोजनाओं चारों ओर सुनायी देने लगी हैं। हमारी याददाश्त कितनी कमजोर है— जरा याद करें जब 2009 में उत्तराखण्ड में भयंकर सूखा पड़ा था। उस सूखे को सदी का सबसे बड़ा अकाल कहा गया था। पानी के स्रोत सूख गये थे, पेयजल के लिए हाहाकार मचा था, तब गांव-गांव में टैंकरों या घोड़े-खच्चरों से ढुलान कर पी. डी. एस. की तर्ज पर नपा-तुला पानी गांवों में बांटा जा रहा था। किसान कहीं बीज बुआई नहीं कर पाये, तो जहां बुआई हुई वहां कटाई की नौबत ही नहीं आयी। फसलें नष्ट हो गई थीं। 2009-10 में सूखा राहत का खूब ढोल पीटा गया। पर राहत आज तक नहीं मिली। यह सूखा 2010 की जुलाई के मध्य तक चला, अगस्त के मध्य से सितम्बर तक इतनी भारी बारिश हुई कि चारों ओर बाढ़ व भूस्खलनों से तबाही मच गई। उत्तराखण्ड सरकार ने केन्द्र सरकार से 2100 करोड़ की आपदा सहायता मांगी, किन्तु मिले सिर्फ 600 करोड़। आश्चर्य की बात यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक पेयजल संसाधनों, रास्तों, पुलिया आदि की मरम्मत आज तक नहीं हो पायी है। कहीं-कहीं दिखावा मात्र के लिए काम हुआ, लेकिन हाल ही में आयी आपदा से तो और भी ज्यादा तबाही हो गयी, अब उनके पुराने सब पाप धुल गये हैं। नये-नये प्रोजेक्ट, नये-नये एस्टीमेट बनाने में सब विभाग व्यस्त हैं।

जहां तक दैवी आपदा का सवाल है, भूकम्प को एक हद तक दैवी आपदा कहा जा सकता है और उत्तराखण्ड इसके लिए अति संवेदनशील है। यहां अधिकांश हिस्सा खतरनाक जोन 5 में पड़ता है। यहां भूकम्पों का इतिहास निश्चित तौर पर बड़ा खतरनाक रहा है। 1803 में उत्तराखण्ड में खतरनाक भूकम्प आया था, जिसमें यहां की लगभग 80 प्रतिशत आबादी खतम हो गई थी। भूकम्प से टूट चुके गढ़वाल राज्य पर नेपाल ने आक्रमण कर जीत लिया। 12 वर्ष तक यहां नेपाल के गोरखा शासकों का शासन रहा। तब यहां न तो बहुमंजिली इमारतें थीं, न बांध-बैराज, न टनल, न सड़कें। आज यदि ऐसा भूकम्प आये, तो कल्पना करें कितनी तबाही होगी? आज मानव निर्मित भूकम्प बुलाने के लिए टिहरी बांध जैसी झीलें भी तैयार कर ली हैं।

भूकम्पों की श्रृंखला अभी जारी है। 1991 में उत्तरकाशी में आये भूकम्प से 1 हजार के लगभग जानें गयी थीं, भारी जन-धन की हानि हुई थी। 1999 में फिर चमोली व अन्य क्षेत्रों में भूकम्प से जन-धन की हानि हुई। हमारे आपदा प्रबन्धन के कागजों पर बड़ी तैयारियां होती हैं, किन्तु आपदा के वक्त यह प्रबन्धन गायब हो जाता है। कहीं भी आपदा प्रबन्धन कारगर साबित नहीं हुआ और हाल ही में आयी आपदा ने तो इसकी पूरी पोल खोलकर रख दी है। यह बात पक्की है कि भविष्य में और बड़ी आपदाएं आ सकती हैं। इसलिए आपदा प्रबन्धन का पूरा ढाँचा बदलना होगा। और आपदा प्रबन्धन की पूर्व संचार तकनीकी विकसित करनी होगी।

बांधों के आस-पास के ग्रामीणों के लिए आपदा प्रबंधन करने वाली जल विद्युत कम्पनियां अपने ही बुने जाल में इतनी बुरी तरह फँसी कि कई कंपनियों का अपना ही सब कुछ तहस-नहस हो गया। वे अपने आप तो गयीं किन्तु साथ में हजारों लोगों की जीवन लीला भी समाप्त कर दी, और जो जिन्दा बचे, उनकी आजीविका उजड़ गयी। आधुनिक विज्ञान व प्रौद्योगिकी पर बड़ा सवालिया निशान लग गया है कि यह विकास है या विनाश? यदि पर्यावरण मंत्रालय द्वारा गंगोत्री-उत्तरकाशी क्षेत्र को इको सेंसिटिव जोन घोषित नहीं किया जाता तो गंगा घाटी में तबाही और भी अधिक होती।

डायनामाइट के धमाके : पिछले दस-पन्द्रह सालों में सड़क, बांध परियोजनाओं व अन्य निर्माण कार्यों के लिए हजारों टन डायनामाइट सामग्री का उपयोग किया गया है। हिमालय की पहाड़ियां इतनी संवेदनशील हैं कि यदि एक पटाखा भी फोड़ें तो उसकी आवाज दूसरी पहाड़ी तक पहुँच कर नई आवाज पैदा करती है। आसमान में जब परीक्षण के लिए फौजी जहाज बम फोड़ते हैं, तो घरों में कम्पन होता है। लेकिन यहां बांध परियोजनाओं की टनल व सड़क-निर्माण के लिए भारी से भारी विस्फोटकों का इस्तेमाल किया गया है। इसकी अनुमति भी कहीं से ली गयी या नहीं, यह संदेह में है। बांध परियोजनाओं में टनल बनाने के लिए डायनामाइट के दुष्प्रभाव किसी भी सुरंग आधारित जल विद्युत परियोजना में देखे जा सकते हैं। सुरंग के आस-पास ही नहीं अपितु दूर तक का कोई घर ऐसा नहीं जो क्षतिग्रस्त न हो। विस्फोट के समय धरती पर दरारें पड़ जाती हैं, और बारिश होने पर इन दरारें पर पानी का रिसाव होता है, जिससे भूस्खलन व भूक्षरण होता है और बाढ़ आती है, फिर तबाही होती है। टिहरी बांध के टनल के धमाकों से जमीन इतनी कमजोर हुई कि जीरो ब्रिज से होकर देव प्रयाग व अन्य क्षेत्रों को जाने वाली सड़क हर वर्ष भूस्खलन से वर्षान्त में बन्द रहती है। भविष्य में यह सड़क पूरी तरह बन्द भी हो सकती है। इसी कारण आज सारा ट्रैफिक टिहरी बांध के ऊपर चल रहा है। भिलंगना व प्रताप नगर ब्लाक के लोगों ने दूरी घटाने की दृष्टि से जब बांध के ऊपर की सड़क को मुख्य सड़क बनाने की मांग की तो सुरक्षा के बहाने उन्हें अनुमति नहीं दी गई।

निःसंदेह डायनामाइट पहाड़ों के लिए बहुत खतरनाक है। निर्माण कार्यों में डायनामाइट के प्रयोग से अनेकों जलस्रोत भी सूख जाते हैं। लेकिन निर्माण कार्यों में लगी कम्पनियां और ठेकेदारों को इसमें सुविधा है, इसलिए इतनी बड़ी आपदा के बाद भी पुनर्निर्माण कार्य के लिए लो.नि. वि. व बी. आर. ओ. बेतहाशा डायनामाइट के धमाकों को नहीं रोक रहे हैं। डायनामाइट के धमाकों को रोकने के लिए उच्च निर्णय लिया जाना जरूरी है। डायनामाइट के विकल्प ढूंढे जाने चाहिए।*...शेष अगले अंक में*

उद्योग, विकास और पर्यावरण

❑ पी के खुराना

राज्य की आर्थिक प्रगति और विकास के विश्लेषण में यदि इन मानकों को भी शामिल कर लिया जाये तो राज्य के वास्तविक विकास को बेहतर समझा जा सकता है। पर्यावरण स्थिरता सूचकांक तय करना इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। यह एक लंबी बहस है कि उद्योगों से पर्यावरण पर क्या असर पड़ता है। अभी तक इस पर कोई समग्र और आधिकारिक अध्ययन उपलब्ध नहीं था, क्योंकि इसके लिए आवश्यक कोई दीर्घकालीन आंकड़े ही उपलब्ध नहीं थे। हालांकि अब इस क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई है, कुछ नये और उपयोगी अध्ययन सामने आये हैं। इन अध्ययनों से किसी अंतिम निष्कर्ष पर चाहे न पहुँचा जा सके, पर ये एक निश्चित दिशा की ओर इंगित अवश्य करते हैं। चेन्नई में स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनांशियल मैनेजमेंट एंड रिसर्च का ताजा अध्ययन 'एन्वायरन्मेंटल सस्टेनेबिलिटी इंडेक्स फॉर स्टेट्स' (भारतीय राज्यों का पर्यावरण स्थिरता सूचकांक) 28 राज्यों की स्थितियों की जांच-पड़ताल का नतीजा है। इस अध्ययन में कुछ प्रमुख मानक थे।

ये हैं, जनसंख्या का दबाव, पर्यावरण पर दबाव, पर्यावरण प्रणालियां, पर्यावरण और स्वास्थ्य पर प्रभाव तथा पर्यावरण प्रबंधन। इन राज्यों में अध्ययन के समय वायु प्रदूषण, वायु की गुणवत्ता, जल प्रदूषण, कूड़े की उत्पत्ति आदि का भी ध्यान रखा गया। यह सच है कि आर्थिक प्रगति से किसी राज्य के असली विकास का पूरा चित्रण नहीं हो पाता क्योंकि इसमें पारिस्थितिक और प्राकृतिक संसाधनों पर उसके प्रभाव की चर्चा नहीं होती। राज्य की आर्थिक प्रगति और विकास के विश्लेषण में यदि इन मानकों को भी शामिल कर लिया जाए तो राज्य के वास्तविक विकास को बेहतर समझा जा सकता है। पर्यावरण स्थिरता सूचकांक तय करना इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। इस तरह से राज्य के विकास और पर्यावरण की आवश्यकताओं का विश्लेषण करके प्राथमिकताओं को तय करना आसान हो जाता है। इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनांशियल मैनेजमेंट एंड रिसर्च के 'भारतीय राज्यों के पर्यावरण स्थिरता सूचकांक' नामक अध्ययन से प्राथमिकताएं तय करने में मदद मिलेगी।

इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनांशियल मैनेजमेंट एंड रिसर्च ने जब भिन्न-भिन्न राज्यों के पर्यावरण स्थिरता सूचकांक का अध्ययन किया तो यह पाया गया कि पर्यावरण स्थिरता सूचकांक के मानकों में मणिपुर सबसे आगे है। मणिपुर के बाद क्रमशः सिक्किम, त्रिपुरा, नागालैंड और मिजोरम प्रथम पांच राज्यों में शामिल हैं। उल्लेखनीय है कि छत्तीसगढ़ जहां औद्योगीकरण बहुत अधिक है, सातवें स्थान पर है, जबकि पंजाब, गुजरात, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान सबसे नीचे के पायदानों पर हैं। सतही तौर पर देखने पर ऐसा लगता है कि चूंकि सिक्किम में बड़े उद्योग नहीं हैं, अतः उसका सबसे ऊपर की पायदान पर होना तथा गुजरात जैसे औद्योगिक प्रदेश का सबसे निचली पायदानों में से एक पर होना स्वाभाविक है, पर यदि जरा बारीक विश्लेषण करें तो एक अलग ही तस्वीर उभरती है। पर्यावरण पर दबाव के मानकों में प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण, प्रदूषण, कूड़ा बनना आदि कारक शामिल हैं। इनको ध्यान में रखते हुए यह तय किया जाता है कि किसी राज्य में पर्यावरण की हानि का पैमाना कैसा है।

इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनांशियल मैनेजमेंट एंड रिसर्च ने 0-100 के पैमाने पर सभी राज्यों के पर्यावरण दृश्य को परखा, इसमें 100 से निकटतम रहने वाले राज्यों में पर्यावरण का सबसे कम नुकसान हुआ है, जबकि 0 के निकट आने वाले राज्यों में पर्यावरण का नुकसान सर्वाधिक है। विश्लेषण में मणिपुर को 98, हिमाचल प्रदेश को 82, छत्तीसगढ़ को 77, महाराष्ट्र को 51, गुजरात को 30 और गोवा को 27 अंक मिले हैं। उपरोक्त अंक तालिका से स्पष्ट है कि गोवा को गुजरात से भी कम अंक मिले, जबकि महाराष्ट्र और छत्तीसगढ़ को गोवा के मुकाबले में बहुत अधिक अंक मिले। सब जानते हैं कि गोवा की प्रसिद्धि उद्योगों के कारण नहीं है और महाराष्ट्र तथा छत्तीसगढ़ जहां औद्योगीकरण बहुत अधिक है, वहां वातावरण का नुकसान गोवा जैसा नहीं है। इस तालिका से यह सिद्ध होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि किसी राज्य में पर्यावरण का नुकसान उद्योगों के ही कारण होगा, यानी यह भी आवश्यक नहीं है कि उद्योग पर्यावरण के लिए नुकसानदेह होंगे ही। इसी प्रकार जब प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण का विश्लेषण किया गया तो यह पाया गया कि गुजरात में यह नुकसान सबसे ज्यादा है, जबकि महाराष्ट्र में वैसा नहीं है।

छत्तीसगढ़ को यहां भी अच्छे नंबर मिले हैं और हिमाचल प्रदेश ने, जहां पिछले कुछ वर्षों में औद्योगीकरण हुआ है, काफी अच्छे नंबर लिये हैं। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि औद्योगीकरण से प्राकृतिक संसाधनों का नुकसान सीधे जुड़ा हुआ नहीं है, वरना हिमाचल प्रदेश और छत्तीसगढ़ जहां सीमेंट प्लांट भी हैं, प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण में सबसे आगे होता, जबकि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। पहाड़ी राज्य होने के कारण उत्तराखंड व हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में अकसर

औद्योगीकरण को लेकर पर्यावरण संतुलन तथा प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण की बहस चलती है। लोगों में और कई बार मीडिया में भी इस बहस को लेकर भ्रम की स्थिति बनी रहती है क्योंकि लोगों के पास असल विकास या पर्यावरण के नुकसान को मापने का कोई मान्य, वैज्ञानिक अथवा तर्कसंगत तरीका नहीं होता। कई लोग भिन्न-भिन्न कारणों से औद्योगीकरण के खिलाफ हैं।

उनमें से कई कारण वैध हैं, लेकिन बहुत बार या तो किसी निहित स्वार्थ के कारण अथवा अज्ञान और गरीबी की मानसिकता के कारण भी लोग बड़े उद्योगों का विरोध करते हैं। वे भूल जाते हैं कि सरकारी नौकरियों का जमाना खतम हो गया है, कृषि लाभदायक व्यवसाय नहीं रह गया है तथा विकास के लिए और रोजगार के नये अवसर पैदा करने के लिए आपको बड़े उद्योगों का सहारा लेना ही पड़ेगा। देश में गरीबी की समस्या को हल करने का एकमात्र तरीका रोजगार के नये अवसरों को पैदा करना है। इसके लिए उद्यमी की जरूरत है। कृषि क्षेत्र में पहले से ही बहुत कम पगार पर बहुत से लोग लगे हुए हैं, इसलिए आपको मैन्युफेक्चरिंग और सेवा क्षेत्रों में रोजगार पैदा करना होगा। अतः हमें यह सोचना होगा कि पर्यावरण को क्षति पहुंचाए बिना औद्योगीकरण कैसे हो सकता है, ताकि रोजगार के अवसर बढ़ें और देश में समृद्धि आये। हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं और सत्रहवीं सदी की मानसिकता से देश का विकास नहीं कर सकते। नयी स्थितियों में नयी समस्याएं हैं और उनके समाधान भी पुरातनपंथी नहीं हो सकते। यदि हमें गरीबी, अशिक्षा से पार पाना है और देश का विकास करना है तो हमें इस मानसिक यात्रा में भागीदार होना पड़ेगा, जहां हम नये विचारों को आत्मसात कर सकें और जमाने के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें। ❑

इंडिया वाटर पोर्टल (हिन्दी)

सहयोगात्मक अर्थव्यवस्था की अनिवार्यता

❑ **अवंति मुखर्जी**

वित्तीय संकटों पर अतिसंयम से निपटने की प्रक्रिया में मनुष्य के काम के अधिकारों, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और शुश्रूषा एवं सामाजिक पुनुरुत्पादन की क्षमता को कमतर किया जाता है। इसके सर्वाधिक विपरीत प्रभाव महिलाओं को भुगतने पड़ने हैं जिन्हें पुनरुत्पादन के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। साथ ही उन्हें उस लैंगिक असमानता का सामना करना पड़ता है जिसका मुख्य कार्य है संसाधनों और अवसरों तक उनकी पहुँच को बाधित करना।

लैंगिक असमानता और आर्थिक संकट : सन् 2008-09 के आर्थिक संकट की वजह से पुरुषों के बजाय महिलाओं को रोजगार की अधिक हानि और गरीबी का सामना करना पड़ा था। सितंबर, 2010 में अमेरिका की राष्ट्रीय बेरोजगारी दर 10 प्रतिशत थी। हालांकि विनिर्माण संबंधी रोजगार जैसे आटोमोबाइल, जो ''पुरुष'' कार्य कहलाते हैं, को इस संकट में सबसे पहले चोट पहुँची। वहीं दूसरी ओर शिक्षण, नर्सिंग और सार्वजनिक क्षेत्र आदि में, जो कि महिलाओं के रोजगार कहलाते हैं, ले ऑफ के चलते संकट-समाप्ति की प्रक्रिया के दौरान भी इन रोजगारों में वृद्धि नहीं हुई। इसी तरह की प्रवृत्ति ग्रीस, इटली, स्पेन, पुर्तगाल और ब्रिटेन में भी देखी गई, जहां पर महिला बेरोजगारी दर काफी अधिक थी। किसी कामकाजी व्यक्ति की अपेक्षा बेरोजगार व्यक्ति के 6 गुना अधिक गरीब होने की संभावना रहती है, अतएव महिलाओं की गरीबी दर पुरुषों से ज्यादा है। अमेरिका में एकल महिला परिवारों में से एक तिहाई गरीब थे, जबकि इसकी तुलना में एकल पुरुष परिवारों एवं शादीशुदा परिवारों में गरीबी की दर क्रमशः 6 एवं 16 प्रतिशत थी। इसी तरह के प्रभाव दक्षिण में भी देखे जा सकते हैं। सन् 2000 के दशक में गहराती मंदी, घटते निर्यात और विदेशी मुद्रा के आने के चलते रोजगार में कमी आई एवं गरीबी का जोखिम भी बढ़ा।

श्रम आधारित निर्यात केंद्रित विनिर्माण क्षेत्र में कोरिया की महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले सात गुना अधिक ले-ऑफ (जबरन छुट्टी) का सामान करना पड़ा। भारतीय महिलाओं को, जो कि अपने घरों से हैं, पीस (प्रति इकाई) दर और अनौपचारिक क्षेत्र में तेज गिरावट का सामान करना पड़ा। फिलीपीन्स के सकल घरेलू उत्पाद का 9 प्रतिशत विदेशों से आता है और वहां पर अंतर्राष्ट्रीय पलायन करने वालों में 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। वहां विदेशों से नकद हस्तांतरण से न केवल देश का भुगतान संतुलन बेहतर हुआ था, बल्कि सन् 2000 के दशक के आरंभ से गरीबी दर में एक तिहाई की कमी आई थी। रोजगार और विदेशों से धन की आवक में कमी से अनौपचारिक क्षेत्र में भी स्रोतों की कमी आई, इसकी वजह से गरीब महिलाओं और उनके परिवारों की आमदनी भी प्रभावित हुई।

महिलाएं चूंकि शुश्रूषा के कार्य से सीधे जुड़ी रहती हैं, ऐसे में उन्हें वित्तीय एवं खाद्य संकट में भी अधिक जोखिम बना रहता है। महिलाएं बच्चों के लालन-पालन के अलावा न केवल भोजन तैयार करती हैं, बल्कि अपने परिवार के लिए खाद्यों को उपजाती, तैयार और इकट्ठा भी करती हैं। अनेक विकासशील देशों में दोहरे अंकों में खाद्य मुद्रास्फीति की वजह से महिलाओं की भोजन उपलब्धता की क्षमता सीधे-सीधे प्रभावित होती है। महिलाओं की प्रवृत्ति होती है कि वे संकट के समय में अपने भोजन में कमी करके पुरुषों और लड़कों

को भोजन देती हैं। भोजन तक पहुँच की कमी और अनिश्चितता के चलते महिलाओं को पतियों की हिंसा का सामना भी करना पड़ता है। घटती आमदनी के चलते, इससे निपटने की रणनीति के तहत मां की मदद करने और उनके भाइयों को शिक्षा मिल सके इस हेतु लड़कियों को विद्यालय से निकाल लिया जाता है।

आर्थिक न्याय की आवश्यकता

लैंगिक न्याय : भेदभाव एवं असमान लैंगिक संबंधों को समाप्त करने के लिए कार्यस्थल पर मानवाधिकारों, शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्याप्त पोषण को अनिवार्य रूप से आपस में जोड़ा जाना आवश्यक है। महिलाएँ सेवा करने वाली एवं पुरुष रोटी कमाने वाला बताने वाला सामाजिक ताना-बाना मानवाधिकारों के लिए विशेष रूप से घातक है। इस तरह की धारणाएं महिलाओं को दोयम दर्जे की कमाऊ सिद्ध करती हैं और बतलाने की कोशिश करती हैं कि उनके पास मात्र यही विशिष्ट कौशल है। इस वजह से श्रम बाजार में उनकी दयनीय स्थिति और कम मजदूरी को न्यायोचित ठहराया जाता है। ओ ई सी डी (विश्व के औद्योगिक देश) देशों में महिलाओं को कमोबेश कम वेतन वाले रोजगारों में 5 से 15 गुना कम वेतन वाले पदों पर नियुक्त किया जाता है। एशिया में महिलाओं को आज्ञाकारी, विनयशील और चपल उंगलियों वाली बताकर उन्हें निर्यात आधारित उद्योग में खपा दिया जाता है। दूसरी ओर कमोबेश इकट्ठा न हो पाने और यूनियन की कमी के चलते इस बात में आसानी होती है कि उनकी मजदूरी को कम कर दिया जाए। उनके लिए घर आधारित कार्य को ही प्राथमिकता दी जाती है, जो कि इस पितृसत्तात्मक रूढ़िवादिता के लिए कोई खतरा नहीं बनता।

संदर्भों को अर्थहीन बनाते हुए देखरेख करने एवं सामाजिक पुनरुत्पादन को केवल महिलोचित जिम्मेदारी की तरह ही देखा और समझा जाता है। सामाजिक पुनरुत्पादन जिसमें प्रजनन, दैनिक और दीर्घावधि वाली देखरेख जिसमें मानव की विशिष्टता भी शामिल है, किसी भी समाज के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसी से यथोचित व्यवहार वाले बच्चे, श्रमिक और नागरिक सामने आते हैं। इसके बावजूद श्रम-बाजार में बहुत योजनाबद्ध तरीके से महिलाओं को तब भी दंडित किया जाता है, जब वे बच्चों को बड़ा करने, अपने घरेलू कार्य और परिवार में संतुलन बनाने में प्रयासरत होती हैं। इस सबके अलावा महिलाओं को बिना अवकाश या नींद के अधिक घंटों तक काम करना पड़ता है। इन सब में एकल मां को अधिक जोखिम उठाना पड़ता है, क्योंकि एक तो उसकी आमदनी कम होती है और दूसरा एकमात्र देखरेख करने वाली होने की वजह से उसके पास समय की भी कमी बनी रहती है।

सामाजिक पुनरुत्पादन सार्वजनिक हित में है, और संकट के समय इसे विशेष संरक्षण की आवश्यकता पड़ती है। सार्वजनिक व्यय में कमी करने से खाद्य, स्वास्थ्य-शुश्रूषा, शिक्षा एवं कार्य से संबंधित सार्वजनिक प्रावधान की सीमा निर्धारित होने से सामाजिक पुनरुत्पादन पर दबाव पड़ता है। इन उपायों की वजह से सभी व्यक्तियों की वास्तविक आय एवं जीवनशैली पर विपरीत असर पड़ता है, लेकिन महिलाओं पर और अधिक भार पड़ता है। इसके विपरीत अमेरिका में जो अपने परिवार के बीमार या विकलांग सदस्यों की तीमारदारी के लिए रोजगार छोड़ते हैं, घरेलू काम करने वालों एवं अंशकालिक कर्मचारियों (जिसमें मुख्यतया महिलाएं ही हैं) को भी राहत पैकेज के अंतर्गत बेरोजगारी भत्ता उपलब्ध करा दिया गया है। भारत में भी प्रत्येक ग्रामीण परिवार को अपने निवास से 5 किलोमीटर की परिधि में बच्चों को रखने की सुविधा सहित सार्वजनिक रोजगार की गारंटी दी गई है। लेकिन दोनों ही देशों के अनके राज्यों में अभी इनका ठीक से क्रियान्वयन नहीं हुआ है।

यह आवश्यक है कि स्थितियों को पटरी पर वापस लाने के लिए मंदी के मौजूदा दौर में खर्च बढ़ाया जाना चाहिए, जिससे कि रोजगार निर्मित हों और सार्वजनिक पुनुरुत्पादन बनाए रखा जा सके। लेकिन इसी के साथ महिलाओं, खासकर एकल माताओं के लिए विशेष प्रावधान किया जाना आवश्यक है। वित्तीय करों एवं शुल्कों से, जैसे वित्तीय लेनदेन पर कर आदि से इन योजनाओं की वित्तीय मदद की जा सकती है। सबसे आवश्यक यह है कि वैश्विक, आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था से लैंगिक भेदभाव को समाप्त किया जाए। *(सप्रेस)*

उद्‌बोधन

विचार को खामोश होना चाहिए

जब विचार कार्यरत है तो यह अतीत ही है जो सक्रिय है और इसलिए यहाँ कुछ भी नया नहीं है, यह तो अतीत का ही वर्तमान में जीना है, स्वयं में और वर्तमान में बस थोड़ा फेर-बदल करते हुए। तो इस प्रकार के जीवन में कुछ भी नया नहीं है; और साथ में यह भी आवश्यक है कि मन में विचार, भय, सुख और तमाम चीजों का कोलाहल न हो। केवल तभी, जब मन कोलाहलमुक्त है, कुछ नया, नूतन अस्तित्व में आ सकता है। यही कारण है कि हम कहते हैं कि विचार को खामोश होना चाहिए, और जब आवश्यक हो उसे तभी कार्य करना चाहिए, और वह भी वस्तुनिष्ठ ढंग से और कुशलतापूर्वक। जितनी भी निरंतरता है वह विचार है—निरंतरता के साथ नया कुछ भी नहीं है। क्या आप देख पा रहे हैं कि यह कितना महत्त्वपूर्ण है? यह प्रश्न वास्तव में जीवन से एकदम जुड़ा है। या तो आप अतीत में जीते हैं, या फिर पूर्णतया भिन्न रूप से—यही सारा मुद्दा है। **–जे. कृष्णमूर्ति**

('अर्जेन्सी ऑव चेन्ज' से)

बाढ़ और डूब में फर्क होता है

❑ हिमांशु उपाध्याय

तकनीकी अभियांत्रिकी नजरिये से कहा जाये तो बाढ़ कुछ समय के लिए निचली भूमि पर छा जाती है, लेकिन एक बड़ा बांध मानूसन के दौरान मौसमी बाढ़ के प्रवाह को रोक लेता है और इसको डूब में परिवर्तित कर देता है। जिसके फलस्वरूप हजारों एकड़ कृषि भूमि, गांव और शहर, कुछ घंटों या दिनों के लिए ही नहीं, कई मामलों में हमेशा के लिए भी डूब में आ जाते हैं।

इंडियन एक्सप्रेस के वडोदरा संस्करण में सरदार सरोवर नर्मदा निगम के अधिकारियों के हवाले से खबर छपी कि 23 अगस्त को बांध स्थल पर जलस्तर 128.68 मीटर तक पहुँच गया है और इसके 130 मीटर तक पहुँचने की संभावना है। लेकिन 24 अगस्त को पानी 131.05 मीटर तक पहुँच चुका था, जबकि यह बांध 121.92 मीटर की ऊंचाई तक निर्मित हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि पानी के इससे ऊपर जाने पर 7 से 9 मीटर (24 से 30 फुट) ऊंची पानी की दीवार खड़ी हो गयी, जिससे प्रति सेकेण्ड लाखों क्यूसेक पानी निचले स्थलों पर भरने लगा। गौरतलब है, यह सारा पानी निचले बांधों से छोड़ा गया था। सोचिए, क्या ऐसा सम्भव नहीं था कि बांधों के लबालब हो जाने के पहले मध्य जुलाई से ही जब बारिश धीमी थी धीरे-धीरे पानी छोड़ा जाता। उसी समय नर्मदा घाटी में जो देखा गया वह बाढ़ नहीं थी। हालांकि मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री, जिन्होंने इस स्थिति का हवाई सर्वेक्षण किया, हमें और मीडिया को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि यह बाढ़ ही थी। वास्तव में इस बाढ़ ने डूब या जलप्लावन के प्रभाव को कई गुना कर दिया।

डूब प्रभावितों की त्रासदियों को दरकिनार करते हुए गुजरात पर्यटन विकास निगम एवं सरदार सरोवर नर्मदा निगम लिमिटेड ने हजारों गुजराती पर्यटकों के सामने बांध स्थल को एक पर्यटन एवं पिकनिक पैकेज के रूप में प्रस्तुत किया। पर्यटकों का सैलाब बांध स्थल पर टूट पड़ा और बांध की ऊंचाई देखकर वह चमत्कृत भी था। लेकिन सम्भवतः बहुत कम लोगों ने यह प्रश्न किया होगा कि बांध की दीवार के दूसरी तरफ क्या हो रहा है। यदि वे जानना चाहते, तो मध्य प्रदेश के चिखल्दा के लोगों से पूछ सकते थे।

चिखल्दा और बड़वानी-बड़ौदा को जोड़ने वाले राजघाट पुल पर इस वर्ष के जल स्तर की सन् 1994 की बाढ़ से तुलना करते हुए रेहमत लिखते हैं, "इस बार इसने 1994, जब सबसे अधिक बाढ़ आयी थी, से भी 1.5 फीट ऊंचे स्तर को छू लिया है। इससे जबर्दस्त नुकसान हुआ है और चिखल्दा के तकरीबन एक चौथाई घर डूब में आकर ढह गये हैं। पानी का स्तर मंडलेश्वर, जो कि महेश्वर जल विद्युत परियोजना क्षेत्र में आता है, में उतरना प्रारम्भ हो गया है, हमें उम्मीद थी कि अगले चार घंटे में (24 अगस्त) यहां भी पानी उतर जायेगा। परंतु जल-स्तर का कम होना अभी भी प्रारम्भ नहीं हुआ है। गौरतलब है पश्चिमी निमाड़ के गांवों में आज भी 1994 एवं 1970 के दशक की बाढ़ की दहशत महसूस की जा सकती है।

नर्मदा बचाओ आंदोलन ने 25 अगस्त को जारी अपनी प्रेस विज्ञप्ति में डूब को मध्य प्रदेश एवं गुजरात सरकारों का आपराधिक षड्यंत्र बताया है। इसमें आरोप लगाया गया है कि राज्यों ने हाथ मिलाकर हजारों प्रभावित परिवारों की जल-समाधि बनाने का षड्यंत्र किया, जिनका पुनर्वास हर हालत में जून, 2005 तक अर्थात् नर्मदा जल विवाद ट्रिब्युनल अवार्ड 1979 की धाराओं के हिसाब से किया जाना था, उनका पुनर्वास नहीं किया गया। नबआ की विज्ञप्ति में बताया गया है कि डूब के मौजूदा दौर में ऐसे गांव जिन्होंने नर्मदा नियंत्रण प्राधिकरण "डूब क्षेत्र से बाहर" बता चुका है, के सैकड़ों घर डूब गये।

डूब के तीसरे चरण द्वारा खेत और रहवास को अपने में समेटने के बावजूद भीतरी गांवों में महज एक या दो पुलिस अधिकारी तैनात थे। नबआ ने नर्मदा घाटी विकास प्राधिकरण के इस व्यवहार और राहत-कार्यों की अनुपस्थिति को लेकर सवाल उठाये हैं, क्योंकि प्राधिकरण प्रत्येक वर्ष मानसून के बाद राहत-कार्यों पर भारी मात्रा में धन व्यय किये जाने का दावा करता है। नर्मदा घाटी में इस बार मानसून की प्रवृत्ति 2002 जैसी थी। उस वर्ष भी जल-स्तर बहुत जल्दी बढ़ना शुरू हो गया था।

उस रात कुछ दोस्तों के साथ मैं हापेश्वर से एक नाव लेकर केवल यह देखने जलसिंधी पहुंचा था कि लुहारिया ने जो घर बनाया है क्या वह समूचा पानी में डूब गया। लुहारिया के घर को पी साईनाथ की पुस्तक 'एवरीबडी लव्ज ए गुड ड्राउट' ने प्रसिद्ध कर दिया था। लुहारिया ने मानूसन के पहले ऊंचाई पर अपना घर बना लिया था और वहां खड़ा देख रहा था कि किस तरह उसका खेत डूब में आ रहा है। पिछले एक दशक से ज्यादा से वह ऐसा ही कर रहा है और आंदोलन का लोकप्रिय नारा "कोई नहीं हटेगा" दोहराता रहता है।

बिगड़ती स्थिति : वर्ष 2002 की बाढ़ ने मुझे काफी कुछ सिखाया था। जुलाई में बांध के बैकवाटर में इजाफा हुआ, तब नासिक की अभिव्यक्ति संस्था के मेरे फिल्मकार मित्र और मैं नाव से हापेश्वर शिव मंदिर के गर्भगृह के सामने खड़े थे। बाद में इसी महीने में मैं जब मुम्बई के पत्रकार मित्र के साथ महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश के गांवों में जाने का प्रयास कर रहा था, तो एकाएक उसी स्थान पर हम दलदल में फँस गये। लेकिन हम भाग्यशाली थे कि बच गये।

अगले साल अगस्त में मैं जब हापेश्वर पहुंचा तो मल्लाह ने मुझे दो मंजिले हापेश्वर मंदिर कॉम्प्लेक्स की दूसरी मंजिल पर उतारा। गुजरात-मध्य प्रदेश की सीमा पर नर्मदा किनारे डूबे पहले गांव हापेश्वर ने मुझे सतर्क कर दिया और मैं डूब के प्रभाव की व्यापकता को समझ पाया। मुझे जलसिंघी, डोमखेड़ी और नीम गांव के बारे में सोचकर सिहरन हो रही थी। दस वर्ष पश्चात रेहमत द्वारा ई-मेल से भेजे होशंगाबाद के हवाई फोटो एवं सरदार सरोवर बांध की डूब के फोटो देखकर मैं प्रधानमंत्री से यह पूछने को बाध्य हो गया हूं कि क्या हम आज भी बेहतर आपदा नियंत्रण की योजना बना पाये हैं? मैं जहां एक ओर आपदा प्रबंधन की तैयारियों और जोखिम कम करने के उपायों पर चर्चा कर रहा हूं, वहीं दूसरी ओर टाइम्स ऑफ इण्डिया ने एक समाचार में बताया है कि सरदार सरोवर बांध के सुरक्षा दिशा-निर्देश (सेफ्टी मेन्युअल) अभी तक तैयार ही नहीं हुए हैं। क्या ऐसा नहीं होना चाहिए कि जो तीन केन्द्रीय मंत्री सन् 2006 की ग्रीष्म ऋतु में मध्य प्रदेश की नर्मदा घाटी में गए थे, वे पुनः उन्हीं गांवों में जायें और हमें बतायें कि पुनर्वास के दावों का सच क्या है? *(सप्रेस)*

स्मृति-सौरभ

स्वच्छ काशी-आंदोलन

['विनोबाजी की उत्तर भारत यात्रा' पर श्री दामोदरदास मूँदड़ा की लेखमाला का समापन 'सर्वोदय' मासिक के नवंबर, 1952 अंक में हुआ था। प्रस्तुत है उनके दसवें और अंतिम लेख का अंश...]

काशी निवास के अनेक पावन संस्मरण हैं। वे एक स्वतंत्र पुस्तक की सामग्री हैं। परंतु एक अमिट संस्मरण, स्वच्छ काशी-आंदोलन का जिक्र किये बिना इस लेख को समाप्त करना उचित नहीं होगा। काशी पहुँचने पर विनोबाजी ने गंगा-तट का निरीक्षण किया। वहाँ की गंदगी देखकर विनोबाजी को बहुत दुख हुआ। इस बार जब वे जेल से छूटे थे तो नागपुर-स्टेशन के इर्द-गिर्द ऐसा ही दृश्य उन्होंने देखा। उसे उन्होंने अखिल भारतीय प्रदर्शन कहा था। विदेश के यात्री वहाँ से गुजरते समय भारत भूमि के बारे में चित्त पर क्या संस्कार ले जाते होंगे? विनोबाजी व्यथित हृदय से परमधाम लौटे थे और बीस माह तक सूर्य की नियमितता से उन्होंने पड़ोस के सुरगाँव का भंगी-काम किया था। देखने में वह सुरगाँव का भंगी-काम था, लेकिन वह तो वास्तव में उसी स्वच्छ भारत-आंदोलन की पूर्व तैयारी थी, जिसकी एक झाँकी स्वच्छ काशी-आंदोलन में दिखायी दी। विनोबाजी के आह्वान पर 7 सितंबर को हजारों जनता, स्त्री और पुरुष, गंगा-तट को स्वच्छ करने के लिए जुट गये। नगरपालिका, विद्यार्थीगण, शिक्षक, सेवा-दल तथा अन्य स्वयं-सेवक, सब ने सहयोग दिया। घाट-घाट के लिए स्वयं-सेवकों का एक-एक दल नियुक्त किया गया था। झाड़ू, टोकरियाँ, फावड़े, बाल्टियाँ आदि का भी प्रबंध नगरपालिका ने किया था। जगह-जगह पर उसने शौचालय की व्यवस्था की थी। ''संत विनोबा अमर हों'' ''स्वच्छ काशी-आंदोलन सफल हो'', ''स्वच्छ भारत-आंदोलन सफल हो'', के नारों से काशी-नगरी की दसों दिशाएं सात सितंबर की उस मंगल-प्रभात में गूँज उठीं। काशी-विद्यापीठ से सबरे की प्रार्थना करके ठीक साढ़े चार बजे विनोबाजी राजघाट पर पहुँचे, और त्रिलोचन, तेलिया आदि एक-एक घाट और रास्तों की सफाई करते हुए अंत में हरिश्चन्द्र घाट पर साढ़े सात बजे आये। वहां उनका प्रवचन बीस हजार जनता के बीच हुआ। हरेक से उन्होंने सफाई के लिए पंद्रह मिनट की माँग की। सफाई-आंदोलन की छोटी-छोटी विगतों को बारीकी से समझाया। आबालवृद्ध, स्त्री-पुरुषों को बड़ी प्रेरणा मिली। एक अद्‌भुत दृश्य उस दिन काशी-निवासियों ने देखा। सब मिलाकर उस दिन करीब पाँच हजार आदमियों ने इस कार्य में हिस्सा लिया।

इस तरह काशी में ढाई मास कैसे बीत गये, पता नहीं चला। ढाई मास क्या, साढ़े ग्यारह मास ही तो उत्तर प्रदेश में इसी प्रकार सहजरूपेण बीत गये। 'पर जात न जाने दिवसनिन्ह, गये मास ये बीत।' ऐसी स्थिति थी। 12 सितंबर को सबेरे बिहार के लिए कूच करना था। 11 सितंबर को उत्तर प्रदेश की ओर से विनोबाजी को विदाई दी गयी। उसी दिन उनका नया वर्ष भी बैठता है। गत वर्ष वे इसी रोज पवनार से दिल्ली के लिए चले थे। आज 57 पूरे करके वे 58 में प्रवेश कर रहे थे। उनको भावांजलि अर्पण करने के लिए सारे प्रांत के करीब साढ़े पांच सौ कार्यकर्ता उपस्थित थे। **प्रस्तुति : बद्रीनाथ सहाय**

अन्ना मलई राष्ट्रीय गांधी म्यूजियम के नये संचालक

अन्नामलई का राष्ट्रीय गांधी म्यूजियम के कार्यकारी संचालक पद पर नियुक्त होना हम सभी के लिए गौरव का विषय है। इस जवान गांधी विचारक के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। एक तो वे दक्षिण के, उस पर भी उन्हें हिन्दी बिलकुल कम बोलना-पढ़ना आता है। दूसरे, वे भी बाकी गांधीजनों की तरह कभी अपने बारे में बताते नहीं। मेरी उनकी गहरी दोस्ती तब हुई, जब मैं सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष और वे तमिलनाडु सर्वोदय मंडल के मंत्री के नाते प्रदेश नाहक मिलन दौरे पर 10 दिन साथ रहे। बड़ा बातूनी पर हमेशा सिद्धांतों पर बात रखने वाला, अनिन्दा व्रत का पालन करने वाला, निस्पृह, निरपेक्ष यह मित्र गांधी के बारे में न केवल पूरी सत्य ऐतिहासिक जानकारी रखता है, बल्कि उन तत्त्वों को समकालीन सवालों के हल करने में उपयोग भी बहुत खूबी से करता है।

पूरे देश में सत्याग्रह की शताब्दी मनायी जा रही थी। तमिलनाडु दूरदर्शन (पोथीगाई) ने भी इसके लिए कार्यक्रम दिखाने का सोचा। उन्हें मालूम था कि इस बारे में सबसे अधिक जानकारी गांधी अध्ययन केन्द्र, टी. नगर, चेन्नई के संचालक के पास है। वे अन्ना को लेकर उनके निर्देशानुसार उस जगह पहुँचे जहां तमिलनाडु में बड़ा नमक सत्याग्रह हुआ था। वहां पहुंचते शाम हो गयी। सारे कर्मचारी घोर गांधी-विरोधी थे। वे अन्ना से बोले ''हम तो अब खायेंगे-पीयेंगे। क्या आप हमारे साथ आयेंगे?'' अन्ना के मना करने पर वे लोग चले गये और दूर रात लौटे। दूसरे दिन अन्ना की कमेंट्री के साथ शूटिंग शुरू हुई और देखते-देखते माहौल बदलने लगा। दोपहर खाने का समय हो गया। बाकी कर्मचारी फिल्म डायरेक्टर से बोले, तब डायरेक्टर बोला ''अरे खाना तो रोज है, आज शाम से पहले हम यह पहला एपिसोड पूरा करेंगे।'' कुल 300 कि. मी. के रास्ते में फिल्म बनती गयी, तो धीरे-धीरे सारा स्टाफ न केवल गांधी को आदर की नजर से देखने लगा, बल्कि उन्होंने पीना भी छोड़ दिया।

आगे मजे की बात यह है कि इस समूह ने दूरदर्शन तक जाकर मुख्य संचालक से कहा कि हमें पूरा सालभर यह सीरीज चलानी है। मुखिया ने जब फिल्म देखी तो उन्होंने त्वरित इसे मंजूरी दी। फिर तो 400 शनि-रवि आधा घंटा गांधीजी के जीवन पर अन्ना बोलते गए। लोगों में यह सीरियल इतनी पसंद की गयी कि एक बार अन्ना किसी ठेले पर चाय पीने गये, तो चाय वाले और ग्राहक में तू-तू मैं-मैं होने पर चाय वाला बोला ''जरा पोथीगाई (तमिलनाडू दूरदर्शन) पर गांधी देखा करो भाई।'' एक बार मुख्यमंत्री करुणानिधि को किसी ने कहा कि ''इस सीरियल में कुछ ऐसी बात है जो आपके खिलाफ जाती है।'' तब क्या? तुरंत सी.एम. कार्यालय से दूरदर्शन को नोटिस गयी। संचालक ने उसे गंभीरतापूर्वक लेते हुए डायरेक्टर को बुलाया। डायरेक्टर ने वह एपिसोड फिर दिखाया, तो संचालक ने कहा, ''इसमें तो ऐसा कुछ भी नहीं'' तब उन्होंने दुबारा इसे दूरदर्शन पर दिखाया, यह कहते हुए कि एक दर्शक को शंका है, अतः हम पुनः प्रक्षेपित कर रहे हैं।

अन्ना के उस छोटे से गांधी अध्ययन केन्द्र में बापू के बारे में सारे अंतर्राष्ट्रीय सत्य ऐतिहासिक दस्तावेज के साथ कई दुर्लभ किताबें, फिल्में आदि हैं। वे सतत अध्ययन, कार्यक्रम, लेखन में मग्न रहते हुए भी ठक्कर बापा विद्यालय में दलित, पिछड़े विद्यार्थियों के लिए समय निकालते रहते हैं, उनकी सारी देखभाल करते हैं। वैसे वे किसी पद पर नहीं, पर वे ही सब कुछ हैं।

तमिलनाडु सर्वोदय मंडल की पुरानी-नयी पीढ़ी के बीच के विवाद गौण कर उसे सकारात्मक मोड़ पर लाने में, संगठन बढ़ाने में अन्ना की भूमिका अव्वल है। पहले लिखे मुताबिक वे अनिन्दा व्रत का पालन करने और युवाओं को प्रोत्साहित करने में माहिर हैं।

पोथीगाई दूरदर्शन के हर समकालीन सवाल की बहस में अन्ना गांधीयन तत्त्वों से जवाब देते हैं, चाहे अन्न सुरक्षा विधेयक हो या भूमि अधिग्रहण कानून।

निजी जीवन में वे बहुत ही अपरिग्रही हैं। ठक्कर बापा विद्यालय के बड़े परिसर में छोटे से दो कमरों में रहते हैं। आदरातिथ्य में इस दम्पती का कोई सानी नहीं। घर में जरा भी ताम-झाम नहीं। अन्ना के बड़े-बड़े साहित्यिक, राजनैतिक, धनवानों से संबंध हैं, पर वे कभी किसी से कुछ भी अपेक्षा नहीं रखते, न मांगते हैं। ठक्कर बापा विद्यालय के दलित-अनाथ बच्चे, अंध विद्यार्थी उनका परिवार है। हर वर्ष उन्हें लेकर दिल्ली या अन्य जगह ट्रिप के लिए ले जाना वे कभी नहीं भूलते। उनकी पत्नी पूरी तरह हर क्षण उनके साथ हैं। उनकी पत्नी प्रेमाजी भी पूर्णकालीन कार्यकर्ता हैं। इन दोनों का अंतर्जातीय विवाह है। इनके विवाह का दोनों तरफ से घोर विरोध था। पर दोनों ने अपने परिवारों को कह दिया कि आप जब तक प्यार से हां नहीं कहते, तब तक हम शादी नहीं करेंगे। आखिर 11 साल के बाद दोनों परिवार तैयार हुए। अन्ना वैसे मदुरै के रहने वाले हैं। गांधीग्राम विश्वविद्यालय से उन्होंने अपनी सारी उपाधियां हासिल की हैं। उन्हें एक ही बेटी है, वल्लभी। वल्लभी भरतनाट्यम् में निष्णात है। थोड़ी-थोड़ी हिन्दी भी बोल लेती है। इन दोनों को पद की जरा भी अपेक्षा नहीं। अन्ना अच्छे गायक भी हैं। संगीत कला में अच्छी जानकारी और रस है इन दोनों को।

सर्वोदय-दर्शन के इस चिन्तक, अभ्यासक, लेखक, संगठक, सृजनशील कार्यकर्ता को हमारी दुआएं हैं कि वह इसी तरह जीवन में आगे बढ़ें और साथियों को प्यार बाटें।

–डॉ. सुगन बरंठ

गतिविधियां एवं समाचार

गांधीजी की पुण्यतिथि : ''गांधी के सिद्धांतों को जवाहरलाल नेहरू ने समाप्त किया।'' ये बातें गांधीजी की 66वीं पुण्यतिथि पर आयोजित गांधी शांति प्रतिष्ठान, फूलबाग, कानपुर की सभा में बतौर मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए पद्मश्री गिरिराज किशोर ने कही। उन्होंने आगे कहा कि अपने नेताओं की सत्ता-लोलुपता को देखकर गांधीजी ने कांग्रेस की चार आने की सदस्यता से भी त्याग-पत्र दे दिया था।

सभा में भाग लेने वाले नौशाद आलम मंसूरी, डॉ. वी.एन. सिंह, कैलाशनाथ त्रिपाठी, सुरेश गुप्ता, जगदंबा भाई आदि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए देश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर जबरदस्त प्रहार किया।

सभा की अध्यक्षता करते हुए शिक्षाविद् श्रीरामकृष्ण तैलंग ने कहा कि गांधीजी की सादगी, कर्त्तव्य-निष्ठा एवं समाज के प्रति सेवाभाव के विचार हम सभी के लिए अनुकरणीय हैं। डॉ. नीलम त्रिवेदी, अतहर नईम, छोटेभाई नरोना, रामनरेश त्रिपाठी आदि भी सभा में उपस्थित रहे। सभी सदस्यों ने बापू की प्रतिमा पर अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये।

संचालन मनोज सेंगर एवं संयोजन बिन्दा भाई ने किया। अंत में सर्वधर्म प्रार्थना के साथ सभा समाप्त हुई। **–बिन्दाभाई**

गोरक्षा सत्याग्रह 33वें वर्ष में : 11 जनवरी, 2014 को देवनार कतलखाने पर गोरक्षा सत्याग्रह के 33वें वर्ष के अवसर पर भजन, प्रार्थना, गीताई पाठ एवं मंत्रोच्चार घोष के साथ कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। इस अवसर पर राधेकृष्ण गोशाला और लक्ष्मीनारायण गोशाला के 50 कार्यकर्ताओं ने सभा में भाग लिया।

गोरक्षा सत्याग्रह संचालन समिति की बैठक श्री हरीश भाई मेहता की अध्यक्षता में चली, जिसमें निर्णय लिया गया कि सत्याग्रह जारी रहे। विनोबा द्वारा प्रेरित आदेशित सत्याग्रह में ग्राम स्वराज्य के लिए कृषि, ग्रामोद्योग, पर्यावरण रक्षा के लिए अमोघ अस्त्र हैं। हमें विश्वास कर सत्याग्रह के दीप को जलाये रखने में विनोबाजी के आदेश ''करना—हटना नहीं'' का दृढ़ता के साथ पालन करना है।

छत्तीसगढ़ के साथी तीन माह का समय प्रति वर्ष सत्याग्रह को देंगे। महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष 2 माह तक सत्याग्रही भेजेंगे और इनका पूरा खर्च भी वहन करेंगे। अलख भाई एवं सुधाकर भाई ने साल में 6-6 महीने का समय देने की घोषणा की। भाई किशोर कुमार कावले हर महीने 20 दिन का समय देंगे। **–अलग नारायण**

नशामुक्ति सभा संपन्न : 17 नवंबर, 2013 को कुमार आश्रम छात्रावास, मेरठ में नशामुक्ति सभा आयोजित की गयी। अध्यक्षता स्वतंत्रता सेनानी श्री धर्म दिवाकर ने की। संचालन कार्यक्रम संयोजिका डॉ. सरिता त्यागी ने किया। विषय प्रवेश अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद् के महामंत्री श्री महावीर त्यागी ने किया।

16 लोगों ने विचार देकर नशाबंदी के इस अभियान का समर्थन किया। सभा में उपस्थित लोगों ने स्वेच्छा से 'शपथ-पत्र' भर कर इस अभियान को हर प्रकार का सहयोग देने का वचन दिया। राष्ट्रगान से सभा समाप्त हुई। **–महावीर त्यागी**

अखिल भारतीय नशाबंदी कार्यकर्ता सम्मेलन : अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद् का 27वां अखिल भारतीय नशाबंदी कार्यकर्ता सम्मेलन 8 व 9 मार्च 2014 को मोगा, पंजाब में आयोजित है।

पंजाब, जो विकास में अग्रणी था, आज केवल शराब ही नहीं, तरह-तरह के नशों के कारण पिछड़ता जा रहा है। पंजाब के नौजवान नशों में फँसकर अपना, परिवार और समाज का जीवन बरबाद कर रहे हैं।

2014 के लोकसभा चुनाव से पूर्व अखिल भारत स्तर का नशाबंदी सम्मेलन आयोजित करके हम यह संदेश देना चाहते हैं कि जो पार्टी या उम्मीदवार शराब पिलाकर वोट लेना चाहेगा, उसका हम पुरजोर विरोध करेंगे।

सूचनाएं : 1. सम्मेलन स्थल व आवास व्यवस्था–डॉ. श्यामलाल थापर नर्सिंग कॉलेज, बुग्गी चौक, दुसाँज रोड, मोगा-142001 (पंजाब)।

2. स्थानीय संपर्क : (1) डॉ. पवन थापर, मो. 0964613 2501, (2) डॉ. मालती थापर (मो. 09646132502, (3) सरदार अतीत सिंह कल्याण। **–महावीर त्यागी**

सर्वोदय विचार परीक्षा : राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि द्वारा संपूर्ण राजस्थान में सर्वोदय विचार परीक्षा का आयोजन 11 फरवरी 2014 को किया गया।

गांधी भवन, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, सरकारी अनुदानित शिक्षण संस्थाओं में नये केन्द्र सहित जोधपुर में 47 केन्द्रों पर यह परीक्षा आयोजित हुई। प्रवेश परीक्षा हेतु 'गांधीजी का जीवन उन्हीं के शब्दों में' व 'रचनात्मक कार्यक्रम' तथा परिचय परीक्षा में 'गांधीजी की संक्षिप्त आत्मकथा' एवं 'मंगल प्रभात' पुस्तकें पाठ्यक्रम में सम्मिलित की गयी हैं। सभी केन्द्रों पर विद्यार्थियों के अध्ययन हेतु निःशुल्क पुस्तकें गांधी निधि द्वारा उपलब्ध करवायी गयी थीं। **–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन**

'सर्वोदय जगत'
के सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों, लेखकों व शुभ-चिन्तकों से अनुरोध है कि अपने समसामयिक महत्त्वपूर्ण
आलेख
व क्षेत्रीय कार्यक्रमों की
रपट
पत्रिका के लिए जरूर भेजें। आपके सहयोग की सादर अपेक्षा है। **–सं.**

साम्प्रदायिक सद्भाव कैसे बढ़े?

❑ अविनाश चन्द्र

इस विषय पर विचार करने से पहले धर्म किसे कह सकते हैं, उसके मूल तत्त्व क्या हो सकते हैं, इस पर थोड़ा विचार कर लेना जरूरी हो जाता है।

जो मानव जाति में जुड़ाव पैदा कर सके, वह धर्म है। जो मानव जाति के विभिन्न सम्प्रदायों, समूहों में द्वेष बढ़ाये, अलगाव पैदा करे, वह धर्म नहीं है। जिस व्यवहार की अपेक्षा हम दूसरों से करते हैं, उस व्यवहार को स्वयं अपनाना ही धर्म है।

सच्चा धर्म वह है जिसे यदि टटोला जाय, अध्ययन किया जाय, तो उसमें दुनिया के सभी धर्मों के भाव किसी-न-किसी रूप में विद्यमान मिलेंगे। किसी भी सच्चे धर्म में दुनिया के किसी धर्म का अभाव नहीं हो सकता।

धर्म किसी की बपौती नहीं है। इस ब्रह्माण्ड की महासत्ता ने उस धर्म-विचार का पूरी तरह विकेन्द्रीकरण कर दिया है। वह हर अन्तरात्मा में विद्यमान है, खोजनेवाले उसके असली स्वरूप को अपने दिल की गहराइयों में खोज लेते हैं। जब तक पण्डित-मुल्ला जैसे बिचौलिये बने रहेंगे और उनकी दुकानदारी चलती रहेगी, धर्म का कभी दर्शन नहीं हो सकता। धर्म वह है, जिसमें मनुष्य और परमसत्ता का सीधा सम्बन्ध होता है, किसी बिचौलिये के माध्यम से नहीं।

सच्चा धर्म किसी भी तरह के अन्ध-विश्वास के आधार पर नहीं टिकता। वह धर्म को जन्म से मानने से इनकार करता है। हम जन्म से हिन्दू या मुसलमान, सिख, ईसाई आदि नहीं हो सकते। जब हमारी बुद्धि परिपक्व हो जाय और धर्मों का अध्ययन करते हुए पूरे तर्क के साथ किसी धर्म पर श्रद्धा ला सकें, तभी उस धर्म को ग्रहण करना चाहिए। उसके माध्यम से हम सच्चे धर्म तक पहुंच सकते हैं।

छोटा बालक अपने माता-पिता, गुरु की बुद्धि पर श्रद्धा करके चलता है। लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, माता-पिता की बातों को तर्क की कसौटी पर कसता चला जाता है। इसी तरह किसी धर्म को हमने जन्म से ग्रहण कर लिया है, और उस पर वैज्ञानिक चिन्तन नहीं कर रहे हैं, तो वह गलत है, वह अन्धविश्वास पैदा करता है। हमारा विश्वास अन्धविश्वास न बने, हमारी श्रद्धा अन्धश्रद्धा न बने, इसके लिए विश्वास का आधार तार्किक और वैज्ञानिक चिन्तन ही हो सकता है। इनसानियत और मानवता से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। वही दुनिया के सभी धर्म-ग्रंथों का सार है।

हम इस युग में वैज्ञानिक उपलब्धियों पर गर्व करते नहीं थकते, लेकिन अपने जीवन और व्यवहार में वैज्ञानिक चिन्तन तथा व्यवहार करने से कतराते हैं। इस वैज्ञानिक युग में होनेवाले युद्धों, सर्वनाशों से वैज्ञानिक व्यवहार ही दुनिया को बचा सकता है।

अभी दुनिया में धर्म के नाम पर ऐसे सम्प्रदाय चल रहे हैं, जो संकीर्ण राजनीति, पार्टी की राजनीति या राष्ट्रीय राजनीति से गठबंधन करके विश्व के मानव समाज को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास कर रहे हैं। जब कभी मनुष्य में सच्ची धार्मिक-वैज्ञानिक बुद्धि पनपेगी, तो वह दुनिया में राष्ट्र-राष्ट्र और इनसान-इनसान के भेद को सहन नहीं करेगा। क्योंकि दुनिया में सभी इनसानों की मौलिक जरूरतें प्रायः एक जैसी ही होती हैं।

यह भी कह सकते हैं कि इस धरती पर अभी किसी भी यथार्थ धर्म (हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई आदि) की स्थापना नहीं हुई है, क्योंकि सभी धर्म मान्यताओं-श्रद्धाओं पर ही चल रहे हैं, सच्चे वैज्ञानिक-धार्मिक व्यवहार पर नहीं। हम उन धर्मों के ग्रंथों की इज्जत तो करते हैं, उन्हें माथे से भी लगाते हैं, उनकी बेइज्जती होने पर लड़ मरते हैं, लेकिन उनकी शिक्षाओं को जीवन में नहीं लेते। क्या मान्यताएं ही धर्म हैं। कदापि नहीं। यथार्थ धर्म (व्यवहार में) इस धरती पर अभी रत्ती भर भी स्थापित नहीं हुआ है। अपने आचरण के बल पर उसके लिए थोड़ा भी प्रयास मनुष्य करेगा, आचरण को थोड़ा वैज्ञानिक बनाने का प्रयास करेगा, तो इस विज्ञान के जमाने में वह सिर्फ मान्यताओं-श्रद्धाओं के आधार पर चलने वाले धर्मों को चलने से रोकेगा और मानव-मानव को जोड़ने हेतु यथार्थ धर्म की स्थापना, भले ही छोटे से क्षेत्र में सही, करने का प्रयास करेगा।

अभी हम विभिन्न धर्मों में एकता लाने हेतु क्या कर सकते हैं? फिलहाल हम अपने धर्म के अलावा दूसरे धर्मों में निहित सद्विचारों को जाने-समझें, उनकी इज्जत करें, उन विचारों को प्रचारित करें। इसमें दूसरे धर्मवाले भी हमारे धर्म के शुभ तत्त्वों को खोजेंगे, उनका प्रसार-प्रचार करेंगे और अनेक धर्म एक-दूसरे के नजदीक आयेंगे।

दुनिया के सभी धर्मों में तीन चीजें ऐसी हैं जो उन धर्मों के महापुरुषों, संतों, पैगम्बरों की देन हैं, संपूर्ण मानव जाति के लिए। उनसे मानव-एकता साधने में बड़ी सहायता मिल सकती है। प्रत्येक धर्म के संबंधित संतों ने महासत्ता का दर्शन-अनुभव अलग-अलग ढंग से किया है। जो अनुभूति उन्हें हुई, उसका वर्णन उनके ग्रंथों में है। दूसरे, हर धर्म में कुछ धार्मिक कथाएं हैं। तीसरे हर धर्म में कुछ नैतिक-दर्शन हैं। धर्म में निहित तीनों चीजें संपूर्ण मानव जाति के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। इन त्रिविध तत्त्वों पर गोष्ठियां, सेमिनार, सम्मेलन आदि आयोजित करने से धर्म को मानव-धर्म की ओर मोड़ने में बड़ी सहायता मिल सकती है। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600